गढ़वाली लोक साहित्य

उत्तराखण्ड मुक्त विश्वविद्यालय
मानविकी विद्याशाखा
(क्षेत्रीय भाषाएं विभाग)

फोन नं0 05946-261122, 261123
टोल फ्री नं0 18001804025
इ–मेल info@uou.ac.in
http://uou.ac.in

(गढ़वाली भाषा में प्रमाणपत्र कार्यक्रम)

अध्ययन बोर्ड

प्रोफेसर एच. पी. शुक्ल निदेशक, मानविकी विद्याशाखा उत्तराखण्ड मुक्त विश्वविद्यालय श्री रमाकांत बेंजवाल लोक साहित्यकार एवं लेखक, देहरादून, उत्तराखण्ड। श्री देवेश जोशी, लोक साहित्यकार एवं लेखक, देहरादून, उत्तराखण्ड।	डॉ0 राकेश चन्द्र रयाल एसोसिएट प्रोफेसर पत्रकारिता एवं मीडिया अध्ययन विद्याशाखा, उत्तराखण्ड मुक्त विश्वविद्यालय श्री धर्मेन्द्र नेगी लोक साहित्यकार, लोक कवि एवं लेखक, पौडी गढ़वाल, उत्तराखण्ड। श्री गिरीश सुन्दरियाल लोक साहित्यकार, लोक कवि एवं लेखक, पौडी गढ़वाल, उत्तराखण्ड।

पाठ्यक्रम विशेषज्ञ समिति

प्रोफेसर एच. पी. शुक्ल निदेशक, मानविकी विद्याशाखा उत्तराखण्ड मुक्त विश्वविद्यालय श्री नरेन्द्र सिंह नेगी लोक गायक, लोककवि एवं साहित्यकार, पौडी गढ़वाल, उत्तराखण्ड। श्रीमती बीना बेंजवाल लोक साहित्यकार, लोककवि एवं लेखक, देहरादून, उत्तराखण्ड ।	डॉ0 राकेश चन्द्र रयाल एसोसिएट प्रोफेसर पत्रकारिता एवं मीडिया अध्ययन विद्याशाखा, उत्तराखण्ड मुक्त विश्वविद्यालय श्री गणेश खुगशाल 'गणी' लोक साहित्यकार एवं लेखक, पौडी गढ़वाल, उत्तराखण्ड ।

पाठ्यक्रम संयोजन

डॉ0 राकेश चन्द्र रयाल
एसोसिएट प्रोफेसर
पत्रकारिता एवं मीडिया अध्ययन विद्याशाखा
उत्तराखण्ड मुक्त विश्वविद्यालय

इकाई लेखक

इकाई सं0	इकाई का नाम	लेखक का नाम
1	गढ़वाली लोक साहित्य की भूमिका	श्री देवेश जोशी
2	गढ़वाली लोकगीत	श्री देवेश जोशी
3	गढ़वाली लोककथा	श्री गणेश खुगशाल 'गणी'
4	गढ़वाली लोकगाथा	श्री गणेश खुगशाल 'गणी'
5	गढ़वाली लोकनाट्य	श्री देवेश जोशी
6	मुहावरे, लोकोक्तियाँ एवं पहेलियाँ	श्री गणेश खुगशाल 'गणी'
7	गढ़वाली लोक साहित्य का ऐतिहासिक महत्व	श्री गणेश खुगशाल 'गणी'
8	विविधा	श्री देवेश जोशी

पाठ्यक्रम सम्पादन

श्रीमती बीना बेंजवाल

लोक साहित्यकार, लोक कवि एवं लेखक, देहरादून, उत्तराखण्ड।

कॉपीराइट @/उत्तराखण्ड मुक्त विश्वविद्यालय।

संस्करणः प्रथम 2021

प्रकाशक : कुलसचिव, उत्तराखण्ड मुक्त विश्वविद्यालय, हल्द्वानी, 263139 (नैनीताल)

इस सामग्री के किसी भी अंश को उत्तराखण्ड मुक्त विश्वविद्यालय, हल्द्वानी की लिखित अनुमति के बिना किसी भी रूप में अथवा मिमियोग्राफी चक्रमुद्रण द्वारा या अन्य पुनः प्रस्तुत करने की अनुमति नहीं है।

इकाई-1

गढ़वाली लोकसाहित्य की भूमिका

इकाई संरचना

1.1 प्रस्तावना

1.2 उद्देश्य

1.3 गढ़वाली लोकसाहित्य का महत्व

1.4 गढ़वाली लोकसाहित्य का वर्गीकरण

1.5 लोकगीत साहित्य

1.6 लोकगाथा साहित्य

1.7 लोककथा साहित्य

1.8 लोकनाट्य

1.9 लोकोक्ति, मुहावरा व पहेली साहित्य

2.0 सारांश

2.1 शब्दावली

2.2 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

2.3 संदर्भ ग्रंथ सूची

2.4 निबंधात्मक प्रश्न

1.1 प्रस्तावना

लोकसाहित्य और परिष्कृत साहित्य के स्वरूप एवं विधाओं को देखने पर इन दोनों में जो प्रमुख अंतर दृष्टिगोचर होता है वह यह है कि लोकसाहित्य का रूप लोकमानस के समान ही सरल होता है। उनकी भाषा एवं अभिव्यक्ति में एक सहज सपाटपन होता है। वह बौद्धिक व्यायाम, भाव एवं भाषा की उलझनों से सर्वथा मुक्त होता है। उसमें लोकरंजनात्मक माध्यम से प्रस्तुत लोकमानस का झुकाव-दुराव

रहित यथातथ्य प्रतिबिम्बन होता है, जिसमें उसकी परम्परागत सांस्कृतिक धारणाएँ तथा सामाजिक जीवन की मधुर एवं कटु अनुभूतियाँ अन्तर्निहित हुआ करती हैं। कहा जा सकता है कि किसी जाति की भावनाओं तथा चिन्तनधाराओं को जितने विश्वसनीय तथा अनावृत रूप में उसके लोक साहित्य से देखा जा सकता है उतना और किन्हीं अन्य रूपों में नहीं।

भारत में लोक साहित्य के अध्ययन का कार्य यद्यपि अपेक्षाकृत रूप में अत्यंत विलम्ब से प्रारम्भ हुआ फिर भी पिछली अर्द्धशताब्दी में ही इस दिशा में इतना कार्य हो चुका है कि अब भारत के योगदान का भी इस दिशा में सगर्व उल्लेख किया जा सकता है। हिन्दी के क्षेत्र में रामनरेश त्रिपाठी, सत्येन्द्र, डॉ. कृष्णदेव उपाध्याय आदि ने महत्वपूर्ण योगदान दिया है। उत्तराखण्ड के लोकसाहित्य के अध्ययन में डॉ. त्रिलोचन पाण्डे, डॉ. उर्बादत्त उपाध्याय, डॉ. प्रयाग जोशी, डॉ. गोविन्द चातक, हरिदत्त भट्ट 'शैलेश', डॉ. डी.डी.शर्मा, मोहनलाल बाबुलकर, डॉ. शिवानंद नौटियाल, प्रो. देव सिंह पोखरिया का नाम विशेष रूप से उल्लेखनीय है।

गढ़वाली लोकसाहित्य और भाषा के अध्ययन के लिए प्रमुख आधार हैं -यहाँ के असंख्य लोकगीत, लोकगाथा, लोक-कथाएँ और लोकोक्तियाँ। लोकगीतों में मांगल, बाजूबंद और चांचड़ी तो पुरातन हैं। इनसे गढ़वाली भाषा का पुराना स्वरूप स्पष्ट रूप से विदित हो जाता है। शताब्दियों पुराने लोकसाहित्य में भाषा के सौष्ठव, शब्द-सामर्थ्य, अभिव्यंजना आदि के विभिन्न रूपों के दर्शन होते हैं।

गढ़वाली लोक साहित्य में धर्म, समाज, संस्कृति और संस्कारों सम्बंधी मूल्यवान सामग्री निहित है। संस्कृति के दूसरे अंग लोककलाओं में लोक के आदिम कला नमूनों, मनोरंजक नाट्याभिव्यक्तियों, फुर्सत के क्षणों में नाचने-गाने के उल्लास, सुख-दु:ख की अभिव्यक्ति के स्वर हैं। ये अभिव्यक्तियाँ जहाँ उल्लास की थिरकन बनकर गाँवों, खेतों-खलिहानों और मंचों तथा गाँवों के ओबरों में अभिव्यक्त हुई हैं, वहीं इनके गीत, गाथाओं, कथाओं, कहावतों तथा पहेलियों में स्थानीय इतिहास तथा भूगोल सम्बंधी तथ्यात्मक तथा प्रामाणिक सामग्री भी उपलब्ध है। लोक की अभिनयात्मक अभिव्यक्तियों और लोकोल्लास की अनुभूतियों को समझने-बूझने और लोक संगीत के मर्म की अनुभूति के लिए जहाँ लोक-कथाओं में सामग्री का अपरिमित भण्डार है वहीं भाषा वैज्ञानिकों के लिए लोकसाहित्य, रत्नाकर के समान है। इसमें गोता लगाने पर अन्वेषकों को अनमोल रत्न प्राप्त होते हैं।

डॉ. हजारी प्रसाद द्विवेदी ने लोकसृजन को परिभाषित करते हुए लिखा है -

'ऐसा मान लिया जा सकता है कि जो चीजें लोकचित्त से सीधे उत्पन्न होकर, सर्वसाधारण को आंदोलित, चलित और प्रभावित करती हैं, वे ही लोकसाहित्य, लोकशिल्प, लोकनाट्य, लोककथानक आदि नामों से पुकारी जा सकती हैं।'

द्विवेदी जी की इस स्थापना में लोकचित्त शब्द अत्यंत महत्वपूर्ण है।

लोकसाहित्य व्यक्तिसृजित होता है अथवा लोकसमाज-सृजित, इस पर भी कोई भ्रम नहीं होना चाहिए। डॉ. श्रीराम शर्मा ने इस सम्बंध में सीधा-सरल मत दिया है -

'लोकसाहित्य वह मौलिक अभिव्यक्ति है, जो भले ही किसी व्यक्ति ने गढ़ी हो, पर आज जिसे सामान्य लोकसमूह अपनी मानता है।'

1.2 उद्देश्य

गढ़वाली पाठ्यक्रम की यह अध्ययन सामग्री ऐसे पाठकों के लिए बनाई जा रही है जिन्हें गढ़वाली सीखनी है तथा गढ़वाली भाषा के लोकसाहित्य से परिचित होना है। इस अध्ययन सामग्री में हिंदी आधार-भाषा है। इकाई के अध्ययन के बाद आप -

- गढ़वाली लोकसाहित्य के महत्व व वर्गीकरण की जानकारी प्राप्त कर सकेंगे।
- इस इकाई में सम्मिलित गढ़वाली लोकसाहित्य के प्रमुख घटकों अर्थात् लोकगीत, लोकगाथा, लोककथा, लोकनाट्य व लोकोक्ति-मुहावरा-पहेली का प्रारम्भिक परिचय प्राप्त कर सकेंगे।

1.3 गढ़वाली लोकसाहित्य का महत्व

गढ़वाली लोकसाहित्य के महत्व को निम्नवत रेखांकित किया जा सकता है -

1. ऐतिहासिक
2. भौगोलिक-आर्थिक
3. समाजिक
4. धार्मिक
5. नैतिक और
6. भाषाशास्त्र सम्बंधी

लोकसाहित्य में इतिहास की प्रचुर सामग्री है। इस दिशा में सम्यक् अनुसंधान एवं अन्वेषण से अपरिमित उपलब्धियाँ हो सकती हैं। लोक कलाओं के आनुष्ठानिक स्वरूप में लोक के कलात्मक-मांगलिक स्वरूप के दर्शन होते हैं। इन कलाओं में लोक जीवन मुखरित हुआ मिलता है। अभिनयात्मक अभिव्यक्तियों में लोकनाट्य का इतिहास निहित है। नृत्य और संगीत में लोक के विगत इतिहास का लम्बा सिलसिला मिलता है। सारे के सारे लोकवार्ता साहित्य में, स्थानीय इतिहास मिलता है। लाँग लोकोत्सव में बादियों के अधिकारों के संघर्ष की गाथा है तो प्रबंधगीतों और लोक गाथाओं में ऐतिहासिक और अनैतिहासिक राजपुरुषों व स्थानीय शूरमाओं, वीरांगनाओं के शौर्य, प्रेम तथा उत्सर्ग का इतिवृत्त है। संपूर्ण गद्य साहित्य में स्थानीय संघर्ष की जीवंत कहानी है।

लोकवार्ता और लोकसाहित्य के विशेषज्ञ लेखक डॉ. सत्येन्द्र लोकसाहित्य को परिभाषित करते हुए लिखते हैं कि -

'लोकसाहित्य के अन्तर्गत वह समस्त भाषागत अभिव्यक्ति आ जाती है, जिसमें -

1. आदिम मानव के अवशेष उपलब्ध हों।
2. परंपरागत मौखिक क्रम से उपलब्ध बोली या भाषागत अभिव्यक्ति हो, जिसे किसी की कृति न कहा जा सके, जिसे श्रुति ही माना जाता हो, और जो लोकमानस में समाई हुई हो।
3. कृतित्व हो किंतु वह लोकमानस के सामान्य तत्वों से युक्त हो। उसके किसी व्यक्तित्व के साथ सम्बंध रहते हुए भी, लोक उसे अपने ही व्यक्तित्व की कृति स्वीकार करें। '

1.4 गढ़वाली लोकसाहित्य का वर्गीकरण

यद्यपि लोकसाहित्य के वर्गीकरण से अधिक महत्वपूर्ण उसका संकलन है। कारण ये कि अधिकतर लोकसाहित्य वाचिक परम्परा से ही अपना अस्तित्व बनाये हुए है। पश्चिमी देशों में लोकसाहित्य को लेकर पर्याप्त और सुव्यवस्थित अध्ययन हुआ है पर भारत में अभी राष्ट्रीय स्तर पर बहुत अधिक कार्य नहीं हुआ है। अध्ययन की सुविधा के लिए, अद्यतन संकलित गढ़वाली लोकसाहित्य को निम्नानुसार वर्गीकृत किया जा सकता है :-

1. लोकगीत साहित्य
2. लोकगाथा साहित्य
3. लोककथा साहित्य
4. लोकनाट्य
5. लोकोक्ति, मुहावरे और पहेली साहित्य

1.5 लोकगीत साहित्य

किसी भी समाज की लोकस्मृति में अनेक मनोवेग दबे-छुपे रहते हैं। हर्ष और प्रेम के, संयोग और वियोग के, करुणा और अभावजन्य कष्ट के। ये सब अनुकूल अवसर आने पर लोकगीत के रूप में अभिव्यक्त होते हैं। किसी समाज या क्षेत्र के जनमानस का अतीत इतिहास में भले ही दर्ज़ न हो पाए पर लोकगीतों में वो अवश्य ही प्रतिबिम्बित होता है। लोकगीत भी व्यक्ति सृजित ही होते हैं। अंतर बस इतना होता है कि सृजक की भावनाएँ जनभावनाओं या लोकभावनाओं का प्रतिनिधित्व करने लगती हैं। उनमें समुदाय का जीवन झलकने लगता है। फिर सृजक गौण हो जाता है और सृजन महत्वपूर्ण। जिस गीत को लोक आत्मीयता से अपना लेता है वो लोकगीत हो जाता है। कई बार लोकगीत के पद एकाधिक व्यक्तियों द्वारा

सृजित होते हैं जिनमें कई बार पीढ़ियों का अंतर भी होता है। मुद्रित और श्रव्य-दृश्य माध्यम में सुरक्षित न होने के बावजूद भी लोकगीत सदियों की यात्रा, लोकस्मृति और लोककंठ के दम पर ही करते आये हैं। प्रख्यात लोकगीत अध्येता देवेन्द्र सत्यार्थी का निष्कर्ष महत्वपूर्ण है - 'बहुत से लोकगीत जो पहली दृष्टि में बहुत कवित्वपूर्ण नहीं लगते, थोड़ा गहराई में जाने पर समाजशास्त्रीय अध्ययन की अद्‌भुत सामग्री सिद्ध होते हैं।' डॉ. वासुदेव शरण अग्रवाल लोकगीतों को किसी संस्कृति के मुँह बोलते चित्र कहते हैं।

गढ़वाली लोकगीतों के कुछ प्रमुख प्रकार निम्नवत् हैं -

- मांगल
- बाजूबंद
- झुमैलो
- चौंफला (चौंफुला)
- थड्या (थडिया)
- छोपती
- चांचड़ी

1.6 लोकगाथा साहित्य

लोकगाथा या कथात्मक गीत, अंग्रेजी में बैलेड शब्द से अभिहित है। लैटिन शब्द वेप्लेर से व्युत्पन्न बैलेड का अर्थ है, नृत्य करना। कालांतर में इसका प्रयोग केवल लोकगाथाओं के लिए किया जाने लगा। लोकगाथा को परिभाषित करते हुए विभिन्न विद्वानों ने भिन्न-भिन्न विचार प्रकट किए हैं। इन परिभाषाओं में कुछ सर्वमान्य तत्व विद्यमान हैं।

जी.एन.किटरेज ने लोकगाथा को कथात्मक गीत अथवा गीतकथा कहा है। फ्रैंक सिजविक लोकगाथा को सरल वर्णनात्मक गीत मानते हैं, जो लोकमात्र की संपति होती है और जिसका प्रसार मौखिक रूप से होता है। डॉ. सत्येन्द्र ने लोकगाथा में ऐतिहासिक बिंदु की सत्यता को प्रमाणिक माना है। उनका मत है कि ऐतिहासिक बिंदु से हमेशा यह मतलब नहीं होता है कि वे यथार्थ में पैदा हुए ही हैं। घटनाओं का क्रम काल्पनिक होता हुआ भी ऐतिहासिक माना जाता है। और ऐतिहासिक होता हुआ भी काल्पनिक सिद्ध हो जाता है। गढ़वाली लोकगाथाओं के संदर्भ में डॉ.गोविन्द चातक लिखते हैं कि मध्य हिमालय में लोकगीतों की भांति ही लोकगाथाओं का अक्षय भण्डार है। किन्तु लोकगीतों की तुलना में वे अब या तो जाति-विशेष या अनुष्ठान-विशेष की धरोहर बनकर रह गई हैं, नष्ट हो गई हैं। इनमें धार्मिक-पौराणिक जागर गाथाएँ पूजा-घडियाला के अवसर पर जागरी पुरोहितों के द्वारा देवता का आह्वान और नर्तन के लिए गाई जाती हैं। इनके अतिरिक्त आवजी-बाजगी अथवा पुराने चंफ्या-हुड़किया भी ये गाथाएँ गाते हैं। आवजी-वादक भी ढोल-दमामा बजाते हुए देवता की पूजा में माध्यम को नचाते हुए गाते हैं। चैत के

महीने में ये सवर्णों के घरद्वार में गाथाएँ गाते हुए नाचते हैं। रोपनी के अवसर पर वे ढोल बजाते हुए जीतू बगड्वाल की कथा सुनाते हैं।

गढ़वाल की जागर गाथाओं में राम, कृष्ण, देवी, कद्रू-विनता, पांडव, निरंकार आदि कई धार्मिक और पौराणिक गाथाएँ सम्मिलित हैं। वीरगाथाएँ अधिकतर मध्यकाल में रची गयी हैं। ये विभिन्न युद्धों से सम्बंधित हैं, जिनका काल 800 ई0 से 1700 ई0 तक पड़ता है। ये गाथएँ अतिरंजनापूर्ण अवश्य हैं किन्तु उनमें ऐतिहासिक सामग्री का अभाव नहीं है। रिखोला, माधोसिंह, रणू, गडू सुमरयाल, कालू भण्डारी आदि भड़ों की वीरगाथाएँ भाट, चंफ्या अथवा हुड़क्या लोगों के द्वारा उन्हीं के जीवनकाल में वाणीबद्ध हो गयी होंगी। भड़ों की वीरगाथाओं को पवाड़े कहा जाता है। अधिकांश पवाड़े अजयपाल (1358 ई0), मानशाह (1547 ई0), गुरु ज्ञानचंद (1698 ई0) तथा कत्यूरी राजाओं के राज्यकाल (850-1050 ई0) से सम्बंधित हैं। वीरगाथाओं के अतिरिक्त मार्मिक-करुण चैती गाथाएँ व प्रणय गाथाएँ भी सामंतवादी परिस्थितियों की देन हैं। नाथ-सिद्ध परम्परा की उपासना पद्धति का भी इन गाथाओं पर प्रभाव है।

1.7 लोक-कथा साहित्य

गढ़वाल में लोककथाओं के संदर्भ में कथा, कहानी और वार्ता इन तीन शब्दों का प्रयोग होता है। वार्ता मुख्यतः देवी-देवताओं के पौराणिक आख्यान के लिए कहते हैं। कानी जीवन की वास्तविक घटनाओं से सम्बद्ध मानी जाती है और कथा काल्पनिक। गढ़वाली में कणो धातु का अर्थ झूठ बोलना, बात बनाना अथवा कल्पना करना होता है। इसीलिए कथा या तो देवी-देवताओं की होती है या फिर काल्पनिक अतिरंजित विषयों की। इसी तरह वार्ता में बात का भाव प्रधान होता है और कथा तत्व गौण।

कथा, कहानी और वार्ता सुनने-सुनाने के दो रूप होते हैं। एक तो कथाएँ की जाती हैं जैसे सत्यनारायण, भागवत और पुराणों की कथाएँ। इनके पीछे धार्मिक प्रेरणा होती है और ये प्रायः अनुष्ठान के रूप में ही की जाती हैं। इन कथाओं का प्रसंग से सीधा सम्बंध नहीं, क्योंकि वे पढ़कर सुनाई जाती हैं और श्रोताओं का उनके प्रति कथा का भाव नहीं रहता। वह उनके लिए एक धार्मिक कर्त्तव्य-सा होता है। इसी प्रकार वार्ताएं भी केवल धार्मिक समारोहों के अवसर पर सुनाई जाती हैं और उनका आधार भी कोई पौराणिक आख्यान ही होता है। वास्तविक कथाएँ वे होती हैं, जिन्हें बूढ़े और बच्चे विश्राम और कार्य के क्षणों में मनोरंजन के लिए सुनाया करते हैं।

गढ़वाली लोककथाओं का पहला लिखित उल्लेख, गढ़वाल के वरिष्ठ सहायक कमिश्नर ट्रैल के लेखों में मिलता है। ये लेख उन्नीसवीं सदी के तीसरे दशक में रॉय एशियटिक सोसायटी में प्रकाशित हुए थे। कुछ लोककथाओं का उल्लेख 1833 की गढ़वाल रेवन्यू सेटलमेंट रिपोर्ट में भी मिलता है। राय पं. गंगाधर उप्रेती बहादुर जो लम्बे समय तक गढ़वाल के वरिष्ठ सहायक कमिश्नर रहे, ने गढ़वाल की लोककथाओं की काफी खोजबीन की। उनके नोट्स रिव. ई.एस. ओकले द्वारा संरक्षित किये गये। 1935 में रिव.ई.एस.

ओकले और तारादत्त गैरोला द्वारा गढ़वाल, कुमाऊँ अंचल की लोककथाओं, विश्वासों और गाथाओं का अंग्रेजी में अनूदित संकलन हिमालयन फोकलोर नाम से प्रकाशित किया गया।

गढ़वाल, लोककथाओं की उर्वर भूमि है। यहाँ की प्रत्येक ऋतु, प्रत्येक फूल, प्रत्येक पक्षी, प्रत्येक नर-नारी की अपनी-अपनी कथाएँ हैं। गढ़वाल में फ्यूंली केवल एक पीला फूल नहीं, वह पहले जन्म की किन्नरी भी है। इन्द्रधनुष केवल आकाश पर खिंची सतरंगी आकृति ही नहीं, किसी प्रणयी के मानस-लोक की स्नेहमयी छाया भी है। ये कथाएँ प्रकृति के साथ ऐसा जीवन-तादात्म्य जिस सुंदरता के साथ व्यक्त करती हैं, वह उनकी एक बहुत बड़ी विशेषता भी है। इसी तरह असंख्य लोक-कथाएँ जीवन और जन्म सम्बंधी हैं।

वैसे रूपक और प्रतिमान तो प्रायः किसी न किसी रूप में सभी देशों और प्रदेशों की भाषाओं में आते हैं किन्तु गढ़वाली लोक-कथाओं का एक पूरा वर्ग रूपक-कथाओं की श्रेणी में आता है। कुछ लोक-कथाएँ अनुभव की यर्थाथता के कारण कहावतों की जननी कही जा सकती हैं। गढ़वाल में कहावतों को औखाणा कहते हैं, जो उपाख्यान का ही एक रूप है।

गढ़वाल का प्राचीन स्वीकृत आदर्श वीर-भाव रहा है। इसलिए ऐतिहासिक कथाओं में वीर-गाथाएँ अधिक मिलती हैं - कफ्फू चौहान, माधो सिंह, जगदेव पँवार, कालू भण्डारी, जीतू तथा रिखोला ऐसी ही कथाएँ हैं। भूतों, राक्षसों, परियों तथा पशु-पक्षियों की कथाएँ तो सर्वत्र ही होती हैं, गढ़वाल में भी उनकी कमी नहीं। हास्य की कथाएँ गढ़वाल में मूर्खों की करतूतों से शुरू होती हैं, जहाँ पात्रों को अविवेकशील बताकर, उनकी मूर्खता पर व्यंग्य किया जाता है और उचित शिक्षा देने की चेष्ठा की जाती है।

गढ़वाली लोक-कथाएँ स्थानीय लोक-मानस को अपने अनुकूल प्रतिबिम्बित करती हैं। आदिम से आदिम युग के आदर्श मनोभाव, नैतिकता और लोक-जीवन के अवशेष उनमें मिल जाते हैं। आखेट, कृषि तथा सामन्त युग के चित्र इनमें आसानी से देखे जा सकते हैं। यद्यपि वे अतिरंजना, मानसिक उड़ान और अद्‌भुत तत्व से आवृत होती हैं, फिर भी उनमें सामाजिक यथार्थ, लोक की दृष्टियों, आदर्शों और मूल्यों को चुना जा सकता है।

1.8 लोकनाट्य

भरतमुनि कृत नाट्यशास्त्र में लोकधर्मीनाट्य वृत्तियों का संकेत मिलता है। रूपक के दस भेदों में समवकार, व्यायोग, भाण और प्रहसन को लोकधर्मी माना गया है। शास्त्रीय नाटकों और लोक नाटक में अंतर यह होता है कि नाटक में कथावस्तु, अभिनय करने वाले, रस तथा अभिनय प्रमुख होता है जबकि लोक नाटक में लोककथा/पौराणिक कथा, गीत, नृत्य, यथार्थ जीवन प्रसंग। लोकनाट्य के लिए किसी विशेष मंच की आवश्यकता भी नहीं होती है। लोकनाट्य की एक विशेषता यह भी होती है कि इसमें

पात्रों के शृंगार-प्रसाधन की विशेष आवश्यकता नहीं होती है साथ ही लोकनाट्य की भाषा भी कृत्रिम न होकर लोकव्यवहार की भाषा होती है। प्रख्यात रंगकर्मी बी.जी.कारंत के अनुसार लोकनाट्य के पीछे कोई शास्त्रीय योजना नहीं होती है। ये लोकमानस के प्रतिबिम्ब हैं।

लोकनाट्य एक ओर धार्मिक भावना की परितृप्ति करते हैं, दूसरी ओर सामाजिक मनोरंजन के साधन भी जुटाते हैं। इस प्रकार चाहे धार्मिक आस्था हो या मनोरंजन दोनों ही उद्देश्य वाले व्यक्ति समान रूप से लोकनाट्य का आनंद लेते हैं।

गढ़वाली लोकनाट्य मुख्यतः दो प्रकार का मिलता है :-

1. धार्मिक
2. लौकिक

धार्मिक लोकनाट्य के अन्तर्गत निम्नांकित लोकनाट्य आते हैं :-

- रामलीला लोकनाट्य
- पांडवकथा लोकनाट्य (पण्डवार्त, चक्रव्यूह, कमलव्यूह आदि)
- देवी-अनुष्ठान लोकनाट्य (नंदाजात, बन्याथ, नंदापाती)
- बेडवार्त
- रम्माण

लौकिक लोकनाट्य के अन्तर्गत आने वाले लोकनाट्य निम्नांकित हैं :-

- पौराणिक व ऐतिहासिक नाटक
- स्वांग

1.9 लोकोक्ति, मुहावरा व पहेली साहित्य

लोकोक्ति का शाब्दिक अर्थ लोक की उक्ति है। किंतु लोक की हर उक्ति लोकोक्ति नहीं होती। लोक की वही उक्ति लोकोक्ति बनती है जिससे कोई सीख देने वाली कथा या आख्यान जुड़ा हो। लोकोक्ति के लिए गढ़वाली में औखाण/औखाणा तथा पखाण/पखाणा शब्द प्रयुक्त होते हैं। संस्कृत के आख्यान या उपाख्यान शब्दों से इनकी व्युत्पति मानी जा सकती है। लोकोक्तियों को पुरखों का अनुभवजन्य सूत्रवाक्य भी कह सकते हैं। लोकोक्तियों में सार्वत्रिक सत्य भी मिलता है और लय-तुक का लालित्य भी। लॉर्ड रसेल ने लोकोक्ति के लिए कहा है कि **A Proverb is the wisdom of many and the wit of one.**

डॉ. वासुदेवशरण अग्रवाल के अनुसार लोकोक्तियों में गागर में सागर भरने की प्रवृत्ति काम करती है। इनसे जीवन का सत्य बड़ी खूबी से प्रकट होता है। वास्तव में लोकोक्तियाँ मानस के अनुभव और ज्ञान के चोखे और चुभते सूत्र हैं। लोकोक्तियों में जीवन के यथार्थ रूप का सत्य या सार, संक्षिप्तता व चटपटेपन से ओत-प्रोत रहता है।

गढ़वाली में एक लोकोक्ति है बुड्या को बोल्यूं अर औंलूं को स्वाद बाद मा पता चल्द। अर्थात् बुजुर्गो की बोली बात का महत्व और आँवलों का स्वाद बाद में पता चलता है। लोकोक्तियाँ, बुजुर्गो के अनुभव से उपजीं ऐसे रससिक्त सूत्रवाक्य हैं जिनका महत्व तत्काल पता चले या अन्तराल के बाद, पर जब चलता है तो कोई भी दाद दिए बिना नहीं रह सकता।

मुहावरों को, साधारण अर्थ छोड़कर किसी विशिष्ट अर्थ को प्रकट करने वाले वाक्यांश के रूप में परिभाषित किया जाता है। गढ़वाली लोक में, कई हिंदी के मुहावरों के लौकिक संस्करण भी देखने को मिलते हैं। गोबर गणेश होना गढ़वाली में मोळो मादेव (गोबर के महादेव) हो जाता है। जहाँ रामकहानी हिंदी में आत्मवृतांत के लिए प्रयुक्त होता है वहीं गढ़वाली में रामैण लगौण, लम्बे वृतांत का अर्थ देने वाला मुहावरा बन जाता है।

पहेलियों में सांकेतिक प्रश्न किया जाता है। श्रोता को संकेतों को समझना पड़ता है। कारण कुछ भी हो पर जब वक्ता अपनी बात सीधे-सीधे रखने में असुविधा का अनुभव करता है तब वो पहेलियों के रूप में अपनी बात रखता है।

2.0 सारांश

लोकसाहित्य और परिष्कृत साहित्य के स्वरूप एवं विधाओं को देखने पर इन दोनों में जो प्रमुख अंतर दृष्टिगोचर होता है वह यह है कि लोकसाहित्य का रूप लोकमानस के समान ही सरल होता है। उनकी भाषा एवं अभिव्यक्ति में एक सहज सपाटपन होता है। भारत में लोक साहित्य के अध्ययन का कार्य यद्यपि अपेक्षाकृत रूप में अत्यंत विलम्ब से प्रारम्भ हुआ फिर भी पिछली अर्द्धशताब्दि में ही इस दिशा में इतना कार्य हो चुका है कि अब भारत के योगदान का भी इस दिशा में सगर्व उल्लेख किया जा सकता है।

गढ़वाली लोकसाहित्य और भाषा के अध्ययन के लिए प्रमुख आधार हैं - यहाँ के असंख्य लोकगीत, लोकगाथा, लोक-कथाएँ और लोकोक्तियाँ। किसी भी समाज की लोकस्मृति में अनेक मनोवेग दबे-छुपे रहते हैं। हर्ष और प्रेम के, संयोग और वियोग के, करुणा और अभावजन्य कष्ट के। ये सब अनुकूल अवसर आने पर लोकगीत के रूप में अभिव्यक्त होते हैं। किसी समाज या क्षेत्र के जनमानस का अतीत इतिहास में भले ही दर्ज़ न हो पाए, पर लोकगीतों में वो अवश्य ही प्रतिबिम्बित होता है। लोकगीत भी

व्यक्ति सृजित ही होते हैं। अंतर बस इतना होता है कि सृजक की भावनाएँ जनभावनाओं या लोकभावनाओं का प्रतिनिधित्व करने लगती हैं। उनमें समुदाय का जीवन झलकने लगता है। फिर सृजक गौण हो जाता है और सृजन महत्वपूर्ण। जिस गीत को लोक आत्मीयता से अपना लेता है वो लोकगीत हो जाता है।

गढ़वाल में लोककथाओं के संदर्भ में कथा, कहानी और वार्ता इन तीन शब्दों का प्रयोग होता है। वार्ता मुख्यतः देवी-देवताओं के पौराणिक आख्यान के लिए कहते हैं। कानी जीवन की वास्तविक घटनाओं से सम्बद्ध मानी जाती है और कथा काल्पनिक। गढ़वाली में कणो धातु का अर्थ झूठ बोलना, बात बनाना अथवा कल्पना करना होता है। इसीलिए कथा या तो देवी-देवताओं की होती है या फिर काल्पनिक अतिरंजित विषयों की। इसी तरह वार्ता में बात का भाव प्रधान होता है और कथा तत्व गौण।

लोकगाथा या कथात्मक गीत, अंग्रेजी में बैलेड शब्द से अभिहित है। लैटिन शब्द वेप्लेर से व्युत्पन्न बैलेड का अर्थ है, नृत्य करना। कालांतर में इसका प्रयोग केवल लोकगाथाओं के लिए किया जाने लगा। लोकगाथा को परिभाषित करते हुए विभिन्न विद्वानों ने भिन्न-भिन्न विचार प्रकट किए हैं। इन परिभाषाओं में कुछ सर्वमान्य तत्व विद्यमान हैं।

मध्य हिमालय में लोकगीतों की भांति ही लोकगाथाओं का अक्षय भण्डार है। किन्तु लोकगीतों की तुलना में वे अब या तो जाति-विशेष या अनुष्ठान-विशेष की धरोहर बनकर रह गई हैं, नष्ट हो गई हैं। इनमें धार्मिक-पौराणिक जागर गाथाएँ, पूजा-घडियाला के अवसर पर जागरी पुरोहितों के द्वारा, देवता का आह्वान और नर्तन के लिए गाई जाती हैं। इनके अतिरिक्त आवजी-बाजगी अथवा पुराने चंफ्या-हुड़किया भी ये गाथाएँ गाते हैं। आवजी-वादक भी ढोल-दमामा बजाते हुए देवता की पूजा में, माध्यम को नचाते हुए गाते हैं। चैत के महीने में ये, सवर्णों के घरद्वार में गाथाएँ गाते हुए नाचते हैं। रोपनी के अवसर पर वे ढोल बजाते हुए जीतू बगड्वाल की कथा सुनाते हैं।

भरतमुनि कृत नाट्यशास्त्र में लोकधर्मीनाट्य वृत्तियों का संकेत मिलता है। रूपक के दस भेदों में समवकार, व्यायोग, भाण और प्रहसन को लोकधर्मी माना है। शास्त्रीय नाटकों और लोक नाटक में अंतर यह होता है कि नाटक में कथावस्तु, अभिनय करने वाले, रस तथा अभिनय प्रमुख होता है जबकि लोक नाटक में लोककथा/पौराणिक कथा, गीत, नृत्य, यथार्थ जीवन प्रसंग। लोकनाट्य के लिए किसी विशेष मंच की आवश्यकता भी नहीं होती है।

लोकोक्ति का शाब्दिक अर्थ लोक की उक्ति है। किंतु लोक की हर उक्ति लोकोक्ति नहीं होती। लोक की वही उक्ति लोकोक्ति बनती है जिससे कोई सीख देने वाली कथा या आख्यान जुड़ा हो। लोकोक्ति के लिए गढ़वाली में औखाण/औखाणा तथा पखाण/पखाणा शब्द प्रयुक्त होते हैं। संस्कृत के आख्यान या उपाख्यान शब्दों से इनकी व्युत्पति मानी जा सकती है। लोकोक्तियों को पुरखों का अनुभवजन्य सूत्र-वाक्य भी कह सकते हैं। मुहावरों को, साधारण अर्थ छोड़कर किसी विशिष्ट अर्थ को प्रकट करने

वाले वाक्यांश के रूप में परिभाषित किया जाता है। पहेलियों में सांकेतिक प्रश्न किया जाता है। श्रोता को संकेतों को समझना पड़ता है। कारण कुछ भी हो पर जब वक्ता अपनी बात सीधे-सीधे रखने में असुविधा का अनुभव करता है तब वो पहेलियों के रूप में अपनी बात रखता है।

2.1 शब्दावली

भड़ - योद्धा, चंफ्या - भाट, हुड़कया - हुड़का वादक

2.2 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

1. साहित्य के दो स्वरूप हैं लोक और .....।
2. द्विवेदी जी की लोकसृजन की परिभाषा में ..... शब्द अत्यंत महत्वपूर्ण है।
3. लोकगीत में सृजक गौण हो जाता है और ..... महत्वपूर्ण।
4. कथा, कहानी और वार्ता ..... के दो रूप होते हैं।
5. जी.एन.किटरेज ने लोकगाथा को..... अथवा गीतकथा कहा है।
6. लोकनाट्य के लिए किसी .....की आवश्यकता भी नहीं होती है।
7. लोकोक्तियों को पुरखों का अनुभवजन्य..... भी कह सकते हैं।
8. गोबर-गणेश होना गढ़वाली में मोळो-मादेव (गोबर के महादेव) हो जाता है।
(सत्य/असत्य)
9. पहेलियाँ में सीधा प्रश्न किया जाता है। (सत्य/असत्य)

उत्तर- 1. परिनिष्ठित 2. लोकचित्त 3. सृजन

4. सुनने-सुनाने 5. कथात्मक गीत 6. विशेष मंच 7. सूत्रवाक्य

2.3 संदर्भ ग्रंथ सूची

1. **Himalayan Folklore : Rev. E.S. Oakley, Tara Dutt Gairola**
2. गढ़वाली लोकगीत विविधा : डॉ. गोविन्द चातक
3. भारतीय लोक संस्कृति का संदर्भ : मध्य हिमालय : डॉ. गोविन्द चातक
4. **Garhwal Ancient and Modern : Rai Pati Ram Bahadur**
5. गढ़वाली भाषा और उसका साहित्य : डॉ. हरिदत्त भट्ट 'शैलेश'

6. उत्तराखण्ड के लोकसाहित्य का आयामी परिदृश्य : प्रो. डी.डी. शर्मा
7. गढ़वाली लोकसाहित्य की प्रस्तावना : मोहनलाल बाबुलकर

2.4 निबन्धात्मक प्रश्न

1. गढ़वाली लोकसाहित्य की भूमिका पर एक निबंध लिखिए।
2. लोकगीत और लोकगाथा में अंतर स्पष्ट करते हुए, दोनों के तुलनात्मक अध्ययन पर एक निबंध लिखिए।

इकाई-2

गढ़वाली लोकगीत (Garhwali Folksong)

इकाई संरचना

1.1 प्रस्तावना
1.2 उद्देश्य
1.3 गढ़वाली लोकगीतों का वर्गीकरण
1.4 गढ़वाली लोकगीतों की विशेषताएँ
1.5 मांगल
1.6 बाजूबंद
1.7 झुमैलो
1.8 चौंफला (चौंफुला)
1.9 थड्या (थडिया)
2.0 छोपती
2.1 चांचड़ी
2.2 सारांश
2.3 शब्दावली
2.4 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर
2.5 संदर्भ ग्रंथ सूची
2.6 निबंधात्मक प्रश्न

1.1 प्रस्तावना

किसी भी समाज की लोकस्मृति में अनेक मनोवेग दबे-छुपे रहते हैं। हर्ष और प्रेम के, संयोग और वियोग के, करुणा और अभावजन्य कष्ट के। ये सब अनुकूल अवसर आने पर लोकगीत के रूप में अभिव्यक्त होते हैं। किसी समाज या क्षेत्र के जनमानस का अतीत इतिहास में भले ही दर्ज़ न हो पाए पर लोकगीतों में वो अवश्य ही प्रतिबिम्बित होता है। लोकगीत भी व्यक्ति सृजित ही होते हैं। अंतर बस इतना होता है कि सृजक की भावनाएँ जनभावनाओं या लोकभावनाओं का प्रतिनिधित्व करने लगती हैं। उनमें समुदाय का जीवन झलकने लगता है। फिर सृजक गौण हो जाता है और सृजन महत्वपूर्ण। जिस गीत को लोक आत्मीयता से अपना लेता है वो लोकगीत हो जाता है। कई बार लोकगीत के पद एकाधिक व्यक्तियों द्वारा

सृजित होते हैं जिनमें कई बार पीढ़ियों का अंतर भी होता है। मुद्रित और श्रव्य-दृश्य माध्यम में सुरक्षित न होने के बावजूद भी लोकगीत सदियों की यात्रा लोकस्मृति और लोककंठ के दम पर ही करते आये हैं।
डॉ. रामनरेश त्रिपाठी ने लोकगीतों को ग्राम्य गीत की संज्ञा दी है। उनके अनुसार 'ग्राम गीत प्रकृति के उद्‌गार हैं। इसमें अलंकार नहीं केवल रस है, छंद नहीं केवल लय है, लालित्य नहीं केवल माधुर्य है। सभी मनुष्य अर्थात् स्त्री-पुरुषों के मध्य में हृदय नामक आसन पर बैठकर प्रकृति गान करती है। प्रकृति के ही गान ग्राम्य गीत हैं। राल्फ विलियम्स का कथन है, 'लोकगीत न पुराना होता है न नया। वह जंगल के एक वृक्ष के समान है जिसकी जड़ें भीतर तक धरती में धँसी हुई है पर जिस में निरंतर नई-नई डालियाँ, पल्लव और फल-फूल रहते हैं।'
प्रख्यात लोकगीत अध्येता देवेन्द्र सत्यार्थी का निष्कर्ष महत्वपूर्ण है कि बहुत से लोकगीत जो पहली दृष्टि में बहुत कवित्वपूर्ण नहीं लगते, थोड़ा गहराई में जाने पर समाजशास्त्रीय अध्ययन की अद्‌भुत सामग्री सिद्ध होते हैं। डॉ. वासुदेव शरण अग्रवाल लोकगीतों को किसी संस्कृति के मुँह बोलते चित्र कहते हैं।

1.2 उद्‌देश्य

गढ़वाली पाठ्यक्रम की यह अध्ययन सामग्री ऐसे पाठकों के लिए बनाई जा रही है जिन्हें गढ़वाली सीखनी है तथा गढ़वाली भाषा के लोकसाहित्य से परिचित होना है। इस अध्ययन सामग्री में हिंदी आधार-भाषा है। इकाई के अध्ययन के बाद आप -

- गढ़वाली लोकगीतों के संकलन के प्रारम्भिक प्रयास और उनके वर्गीकरण की जानकारी प्राप्त कर सकेंगे।
- इकाई के अध्ययन के बाद आप इस इकाई में सम्मिलित गढ़वाली लोकगीतों अर्थात मांगल, बाजूबंद, झुमैलो, चौंफुला, थड्या व चांचड़ी के स्वरूप, गायन-अवसर व विशेषताओं से परिचित हो सकेंगे।

1.4 लोकगीतों का वर्गीकरण

विभिन्न विद्वानों ने गढ़वाली गीतों का वर्गीकरण अनेक प्रकार से किया है। वर्गीकरण के बजाय लोकगीतों को उन विशिष्ठ नामों के द्वारा समझना बेहतर है जो नाम उन्हें लोक द्वारा दिये गये हैं। गढ़वाली लोकगीतों के कुछ प्रमुख प्रकार निम्नवत् हैं -

- मांगल
- बाजूबंद
- झुमैलो
- चौंफला (चौंफुला)

- थड्या (थडिया)
- छोपती
- चांचड़ी

वस्तुतः झुमैलो, चौंफला, थड्या व छोपती नृत्यों के नाम हैं। इनसे सम्बंधित गीतों को भी ये ही नाम दे दिये गये हैं। वर्ण्य-विषय के आधार पर मांगल को संस्कार/धार्मिक गीत के अन्तर्गत भी रखा जा सकता है। इसी तरह, अवसर के आधार पर झुमैलो, थड्या, चौंफला, छोपती और चांचड़ी गीत/नृत्य वसंत-पंचमी से वैसाख के माह तक गाये-नाचे जाते हैं। इसका कारण ये कि इस अवधि में मौसम सुहावना रहता है। प्रकृति वासंती-सौंदर्य से भरपूर रहती है। और ये भी कि चैत्र माह में ब्याहताओं का मायके जाना प्राकृतिक-अधिाकार माना जाता है। जो नहीं जा पाती हैं या जिन्हें लिवाने में विलम्ब हो रहा होता है वे अपनी खुद, अपनी व्यथा को गीतों के माध्यम से बिसूरने का प्रयास करती हैं।

यह भी महत्वपूर्ण है कि थड्या (थडिया) और चाँचड़ी में अंतर मात्र क्षेत्रीय नामकरण का है। दोनों ही प्रकार के लोकगीत किसी विशिष्ट छंद-विधान से मुक्त हैं। दोनों ही में कुछ गीतों में टेक का प्रयोग देखा जाता है और कुछ में टेक का सहारा नहीं लिया जाता है। गढ़वाली लोकगीतों और नृत्यों का घनिष्ठ सम्बंध है। यह इसी से सिद्ध है कि यहाँ ऐसा कोई नृत्य नहीं है जिसके साथ गीतों का समावेश न हो। यही कारण है कि बहुत से गीतों और नृत्यों के नाम एक से हैं। चौंफला, झुमेलो, चाँचड़ी, थड्या आदि संज्ञाएँ गीत और नृत्य दोनों के लिए, लोक में प्रचलित हैं।

लामण रवांई क्षेत्र के लोकगीत हैं। हिमाचल के कुल्लू इलाके में भी लामण गीत गाये जाते हैं। बाजूबंद की तरह ये भी निर्जन वन में लम्बी तान के साथ बिना किसी वाद्ययंत्र के सहयोग के गाये जाते हैं और संवादात्मक होते हैं। वर्ण्य-विषय अधिकतर प्रणय-श्रृंगार ही होता है। लामण दोहे की तरह अंत्यानुप्रासी मुक्तक होते हैं। एक लामण मुक्तक इस तरह है -

सुखा रे लामण दुखा रे गैणे गीता,
दुख न सम्भलो ईजी रे गर्भा भीता।

झोड़ा (झूड़ा) भी रवांई क्षेत्र के गीत हैं। ये सुभाषित अर्थात् सूक्तियां हैं जिनमें जीवन-सत्य और नीति की बातें बतायी जाती हैं। अभाव, आपत्ति और शोक को झेलने के लिए मानसिक रूप से तैयार करते हैं। निश्चित रूप से प्रेमाभिव्यक्ति भी इनका वर्ण्य-विषय होती है, पर प्रमुख नहीं।

जेती त होंद नदी नाड़, तेती नी लायेंदी तर;
जेती त होंदी मुलक बांठीण तेती ना लायेंदी घर।

(जिस तरह नदियों पर सभी जगह पुल नहीं लगाये जा सकते उसी तरह सभी सुंदरियों को घर (ब्याह कर) नहीं लाया जा सकता है।)

हँसी खाण, बाँटी बुलाण, कोया नि बाटुड़ लाणो;
चार दिन मानछड़ो, मरेय अंद्यागौर जाणो ।

(हँसी-खुशी खाओ, सबसे प्रेम से बोलो, दु:ख के बोझ को लादे न रहो। मानव-जीवन चार दिन का है, फिर तो मृत्यु के अँधकार में जाना है।)

तांदी रवांई क्षेत्र के लोक नृत्य/गीत हैं। एक तांदी गीत इस प्रकार है।

ऐंसी गढ़ी पैंसी, मु न मार्या चकरधर मेरी एकात्या भैंसी।

साग लाई कोई, तिलाड़ी को सेरा भायों, इनु क्या होई।

(पैसा गढ़ा है। मुझे न मारना, चक्रधर, मेरी एकहाथिया भैंस है। कोया की सब्जी बनायी, तिलाड़ी के मैदान में भाइयो! ये क्या हो गया है?)

तांदी कोई अलग छंद या काव्य-रूप नहीं है। बाजूबंद का काव्य-रूप ही तांदी में भी प्रयुक्त होता है। तांदी नृत्य भी थड्या, चौंफला तथा छोपती की तरह अर्द्धमंडलाकार किया जाता है।

1.5 गढ़वाली लोकगीतों की विशेषताएँ

गढ़वाली लोकगीतों में निम्नलिखित सर्वमान्य विशेषताएँ हैं -

1. ये वाचिक परंपरा से हस्तांतरित व विकसित होते रहते हैं।
2. अधिकतर लोकगीतों का रचनाकार अज्ञात है।
3. निर्जन वनों का एकांत और मेले-उत्सवों का उल्लास सृजन के प्रमुख उत्प्रेरक हैं।
4. निरर्थक पट वाले लोकगीत प्राचीनतम हैं।
5. लोकगीत व्यक्तिविशेष की रचना नहीं बल्कि समूह की रचना होती है।
6. इनमें निरर्थक शब्द योजना और पुनरावृत्ति की प्रवृत्ति मिलती है।
7. ये काव्यशास्त्र और भाषा शास्त्र के नियमों से रहित होते हैं।
8. ये स्वाभाविक अभिव्यक्ति हैं इनमें अलंकारिता का कोई स्थान नहीं है।
9. ये भावों की लयात्मक अभिव्यक्ति हैं।
10. इनमें प्रकृति का संपूर्ण रूप समाहित मिलता है।
11. प्रश्नोत्तर या संवाद प्रवृत्ति मिलती है।
12. महत्वपूर्ण घटनाओं के अभिलेखीकरण का माध्यम हैं लोकगीत।
13. दिव्य प्रभाव को जागृत करने के उद्देश्य वाले जागर गीतों में सभी पंथों को स्थान मिला है। इनमें शैव, शाक्त, वैष्णव, निरंकार, नाथ, नानक, बौद्ध व इस्लाम शामिल हैं।

1.5 मांगल

विवाह आदि शुभ कार्यों तथा देव पूजन में इन गीतों का सामूहिक गायन किया जाता है। देवताओं का आह्वान, स्तुति, मंगल-कामना, आशीष के भाव इन में निहित होते हैं। विवाह संस्कार की लगभग

सभी रस्मों के लिए विशिष्ट मांगल गीत हैं। इनमें हल्दी कूटने, निमंत्रण देने, गणेश पूजन, बान देने, मंगलस्नान, वर/वधू के वस्त्राभूषण पहनने, आरती, जनेऊ, बारात विदाई व स्वागत, वेदी पूजन, धूलि अर्घ, गोत्रोच्चारण, सप्तपदी संस्कार आदि प्रमुख हैं। निमंत्रण मांगल गीतों में पंचदेवों और क्षेत्रपाल के साथ हल्दी की क्यारी और पद्मवृक्ष को भी निमंत्रण दिया जाता है।

न्यूतण (निमंत्रण) -1

पिंजारी का सुवा अटारी का सुवा
दी आ सुवा तू स्वागिण्यूं न्यूतू
सोनपंखी सुवा लालठूंठी सुवा
दी आ सुवा तू स्वागिण्यूं न्यूतू
जणदू नि छौं मि पछणदूं नि छौं मि
कै घर कै देवी न्यूतिकि औण।
बरमा जी का घर होली सावित्री देवी
वे घर वीं देवी न्यूतिकि आवा।
बिष्णु जी का घर होली लछमी देवी
वे घर वीं देवी न्यूतिकि आवा।
दी आ सुवा तू स्वागिण्यूं न्यूतू।
जणदू नि छौं मि पछणदूं नि छौं मि
कै घर कै देवी न्यूतिकि औण।
माद्यो जी का घर होली पार्वती देवी
वे घर वीं देवी न्यूतिकि आवा।

न्यूतण (निमंत्रण) -2

आवो कागा, बैठो कागा हर्या वृक्ष,
बोल कागा चौदिसो सगुन।
त्वै द्यूलो कागा मी दूद भाती,
आवो कागा, बैठो कागा हर्या वृक्ष।
विचारा बरमा जी कागा की बोली,
जौ जस देन धरती माता,
जौ जस देन कूर्म देवता।
जौ जस देन खोळी को गणेश

जौ जस देन पंचनाम देवता।
आज न्यूती बुलावा हलदानी बाड़ी,
आज न्यूती बुलावा पैयाँ की पाती।
आज न्यूती बुलावा मंगलेनी नारी,
आज होलो मंगल को काज।
तुमारी धरती मा आज यो कारज वीर्यो।
यो काज सुफल फल्यान,
बोला न बोला सगुन बोला।

आह्वान

बीजी जावा बीजी हे खोळी का गणेश
बीजी जावा बीजी हे मोरी का नारेण।
बीजी जावा बीजी हे खतरी का खैंडो
बीजी जावा बीजी हे कुंती का पंडौऊं।
बीजी जावा बीजी हे काँठयो उदंकारो
बीजी जावा बीजी हे नौखंडी नरसिंग।
बीजी जावा बीजी हे संभु भोलेनाथ
बीजी जावा बीजी हे रात की चाँदनी।
बीजी जावा बीजी हे दिन का सूरज
बीजी जावा बीजी हे ऐंच का आगास।
बीजी जावा बीजी हे नीस की धरती
बीजी जावा बीजी हे नौ खोली का नागों।

मांगल गीतों के सौंदर्य में शब्दयुग्म-पुनरूक्ति प्रयोग भी महत्वपूर्ण है। लय-छन्द की दृष्टि से ये अपना पृथक अस्तित्व रखते हैं। उदाहरणार्थ -

केन होये, केन होये कुंडी कौजाळी
केन ह्वेलो, केन ह्वेलो सुरीज धुमेलो
उबा देसू, उबा देसू गौरा नयेणी
यान ह्वेलो, यान ह्वेलो सुरीज धुमेलो।
(किस कारण हुआ, किस कारण हुआ कुण्ड का जल कजला

किस कारण हुआ, किस कारण हुआ सूरज धुंधला
ऊपर के देश में, ऊपर के देश में, गौरा ने स्नान किया
इसलिए हुआ, इसलिए हुआ कुण्ड का जल कजला।)

1.6 बाजूबंद

ये गढ़वाल के प्राचीनतम लोकगीत हैं। इन्हें पटबंद गीत भी कहा जाता है। कारण ये कि पहला तुकांत पट निरर्थक होता है। निरर्थक होते हुए भी उसमें प्रयुक्त शब्दों का चयन भी महत्वपूर्ण होता है। इनका प्रमुख वर्ण्य विषय प्रेम, नख-शिख वर्णन व नीति-उपदेश होता है। ये मुक्तक और संवादात्मक दोनों रूप में मिलते हैं। इनमें छः और आठ वर्णों पर यति होती है। बाजूबंद के प्रत्येक मुक्तक को बाजू या दुवा कहा जाता है। ये गीत निर्जन वनों में घास/चारापत्ती/लकड़ी काटने वाली महिलाओं तथा चरवाहों के द्वारा गाये जाते हैं।

संवादात्मक रूप में -

-1-

फूली जाली जाई,
बाँज कटदारी नौनी कैइ गौं की होली ?
बाबला की कूची,
कै भी गौं की होऊँ तू क्या कदू पूछी।
पाणी का कूळा,
मैं काटलू बाँज, तू बाँधली पूळा।
छाळा दूधा लासी,
डाँडू को भौंर छूटे त्वै फूल की बासी।

-2-

सुलपा की साज।
द्वी बचन बाजू लै दे मुलकी रिवाज।
गुड़ खायो माख्यून, और खांदन गिचीन तु खांदी आंख्यून।
बेडू पाक्या बार, नाथूलि को कस लागे तौं गल्वाड्यों पर।
सुलपा की साज।

द्वी बचन बाजू लै दे मुलकी रिवाज।
दाथी गाड़ी पाती, कैका सिराणा राली सि चुड़्यूं भरी हाती।
घट को भगवाड़ी, रुबसी खुट्यून मैणा तु चल अगवाड़ी।
सुलपा की साज।
द्वी बचन बाजू लै दे मुलकी रिवाज।
बंदूकी को गज, तू चल अगवाड़ी मैणा मैं देखलू सज।
झंगोरू लै गोडी, रोणू-धोणू मैकू ह्वे तू हैंसणू ना छोड़ी।

मुक्तक रूप में -

साग लायी कोया।
सदानि नी रैंदा पाड़-पाखाणु छोया।

पालिंगा को साग।
मनखी जौंली माया होंदी, पुरुष जौंला भाग।

फुली जाली जई।
बाळी माया त्वेमा लाई टूटण ना देई।

कोरी त कुनाली।
तू दिखेन्दी यनी सुवा डाँडू-सी मुनाली।

1.7 झुमैलो

झुमैलो गीतों की पहचान इनका करुण भाव और झुमैलो टेक है। कुछ गीतों में झुमैलो टेक का लोप रहता है। विवाहित व अविवाहित युवतियों व किशोरियों द्वारा मंडलाकार नृत्य करते हुए गाये जाते हैं। वसंत ऋतु अर्थात चैत के महीने में मायके की याद इनका प्रमुख प्रतिपाद्य विषय है। मंद गति का गायन और झूमते हुए किया जाने वाला नृत्य इस लोकगीत की विशेषता है। भोजपुरी और मैथिली के झूमर गीतों से झुमैलो का न सिर्फ़ नाम-साम्य है बल्कि नृत्य का तरीका भी उसी तरह झूम-झूम कर नाचने का है।

-1-

ऐ गेन दादू झुमैलो रितु बौड़ीक झुमैलो।

बारा मैनों की झुमैलो, बारा बसुंधरा झुमैलो।
बारा रितु मा झुमैलो, को रितु प्यारी झुमैलो ?
बारा रितु मा झुमैलो, बसंत रितु प्यारी झुमैलो।
बारा फूलू मा झुमैलो, को फूल पियारो झुमैलो ?
बारा फूलू मा झुमैलो, फ्यूँलड़ी प्यारी भै झुमैलो।
राडा की रडवाड़ूयों मा झुमैलो, राडो फूललो झुमैलो।
गेऊँ जौ की सारी भै झुमैलो, रिंगळी होली पिंगळी झुमैलो।
माळ की घुगूती भै झुमैलो, पर्वतू पौंछली झुमैलो।
बासलू भै कफ्फू झुमैलो, मेरा मैत्यों की तिर झुमैलो।
सैसर की ब्वारी झुमैलो, मैत जाली भै झुमैलो।
मेरी होंदी ब्वई भै झुमैलो, मी मैत बुलाँदी झुमैलो।
निर्मैतीण छोरी बोदी झुमैलो, मी मैत जयौंदू झुमैलो।
जौंका होला मैती झुमैलो, स्यी मैतु जाली झुमैलो।
निर्मैत्या फ्यूँली झुमैलो, डेळी-डेळ्यों जाली भै झुमैलो।

-2-

राडा की रडवाड़ूयों म्वारी रुणाली झुमैलो।
झपन्याली डाल्यों हिलांस बासली झुमैलो।
कांद हळसुंगो लीक हळ्या पुंगड़ूयों जाला झुमैलो।
जौंका होला भाई मैत बुलोला झुमैलो।
आई गैन रितु बौड़ी, दाई जसो फेरो झुमैलो।
मेरा मैत्योंकि पुंगड़ूयोंकि मेंडल्यों मा झुमैलो।
फ्योंलीन पिंगळा ह्वैला रिंगळा झुमैलो।
मेरा मैत्यों का डांडा-कांठा झुमैलो।
लाल डोला बुरांस का सजला झुमैलो।
जौंका होला मैती, मैत बुलोला झुमैलो।

-3-

बास-बास कफ्फू भै झुमैलो, मेरा मैत्यों का चौक झुमैलो।
मेरा मैती सुणला झुमैलो, ऊँ तैं खुद लगली झुमैलो।
जोड़ी सौंजड़ियों भै झुमैलो, बाडुळी लगली भै झुमैलो।
मेरी बोयी सुणली झुमैलो, भैजी मेरा भेजली झुमैलो।

बोयी की चुलड़ी भै झुमैलो, आग भभराली भै झुमैलो।

1.8 चौंफला (चौंफुला)

डॉ. हरिदत्त भट्ट 'शैलेश' रति, हास, मनुहार और अनुनय इन चार फलों के आधार पर इनका नाम चौंफला होना बताते हैं। पर चौंफला नामकरण का वास्तविक आधार पाँच वर्णयुक्त चार चरणों वाले छंद का प्रयोग होना है। पदसंचालन का चपल लास्य इस नृत्यगीत की एक और विशेषता है। संगीत की दृष्टि से ये छः मात्राओं के चार स्वरबद्ध/तालबद्ध चरणों वाले गीत हैं। मुख्यतः ये उल्लाससूचक छंदबद्ध गीत हैं। चौंफला गीतों की एक विशेषता ये भी है कि इनमें तुक मिलाने के लिए असम्बद्ध पट-पंक्ति का प्रयोग नहीं होता है।

-1-

नाँदु त्यरो दादु कां जायूं च ?
दादु सुनार की ओटी च।
ओटी बैठीक क्या करदो च ?
नाक बीसार गढ़ौंदो च।
नाक नथूली गढ़ौंदो च।
बौकी जीकूड़ि झुरौंदो च।
नाँदु त्यरो दादु कां जायूं च ?
दादु सुनार की ओटी च।
ओटी बैठीक क्या करदो च ?
दादू हंसूलि गढ़ौंदो च।
नाक नथूली गढ़ौंदो च।
बौकी जीकूड़ि झुरौंदो च।

-2-

सिर धौंपेली लटकाई कनी,
काला सर्प की केंचुली जनी।
सिन्दूर भरीं च माँग कनी,
नथुली गढ़ीं नगीना जनी।

सी आँखी छन सर्मीली कनी,
डाँडू मा खिलीं बुराँसी जनी।
मुखड़ी को बल रंग च कनो,
बाळा सूरज को रंग जनो।
ओंठूं का बीच दाँतुड़ी कनी,
गठ्याई मोत्यों की माल जनी।
बच्याण वींकी रस्याण कनी
डाँड्यों बासदी हिलाँस जनी।

1.9 थड्या (थडिया)

थाड़ या थौड़ गढ़वाली में चौरस जगह को कहते हैं। आंगन-चौक के लिए भी ये प्रयुक्त होता है। वसंत ऋतु में जब शीत का प्रकोप कम हो जाता है, तब आंगन-चौक में इन गीत-नृत्यों का आयोजन किया जाता है। प्रमुख रूप से इन गीतों में वासंती सौंदर्य के वर्णन के साथ उल्लास की अभिव्यक्ति मिलती है। अन्य वर्ण्य-विषयों में पौराणिक, ऐतिहासिक से लेकर समसामयिक घटनाएँ भी शामिल होती हैं। नृत्य वृत्ताकार घेरे में होता है। गायन कभी किसी अगुआ गायक/गायिका के द्वारा किया जाता है और कभी सामूहिक रूप से।

-1-

आई रितुड़ी रे सुणमुण्या रे।
आई गयो बाळो बसंत रे।
फूलण लैगी गाडू की फ्योंलड़ी।
सेरा की मींडोली नै डाली पैंया जामी।
कूली का ढिस्वाली नै डाली पैंया जामी।
क्वी ढुंगा चीण्योला नै डाली पैंया जामी।
दूपत्ति ह्वेगे नै डाली पैंया जामी।
द्यबतों का सत्तन नै डाली पैंया जामी।
द्यू करा धुपाणो, नै डाली पैंया जामी।
क्वी दूद चार्‌योंला नै डाली पैंया जामी।
चौपत्ति ह्वेगे नै डाली पैंया जामी।
द्यबतों का सत्तन नै डाली पैंया जामी।

-2-

धौली का किनारा यो फूल के को,
अनमन भाँति को यो फूल के को।
सैरो बोण मोयेण यो फूल के को,
सैरी धौली धुमेली यो फूल के को।
देवतों सरोख्या यो फूल के को,
टोपी मा धार लेण यो फूल के को।
धौली का किनारा यो फूल के को।

2.0 छोपती

उत्तरकाशी सीमांत क्षेत्र के ये गीत शृंगारप्रधान होते हैं। वसंतपंचमी से वैशाख माह तक ये लोकगीत गाये जाते हैं। छोपती का पहला पद निरर्थक पट होता है। इसके बाद स्थायी (टेक) आता है। छः वर्णों वाले छः पदों का प्रयोग होने से इन्हें छोपती नाम दिया गया है। छोपती में छः चरणों का एक मुक्तक बनता है। पहला चरण पट अर्थात् तुक मिलाने के लिए (मूल भाव से असंबद्ध) होता है। दूसरे, चौथे और छटे चरण में टेक की पुनरावृत्ति होती है। तुक पहले और पाँचवें चरण में मिलती है। इस नृत्यगीत में पुरुष तथा महिलाओं के दो अर्द्धमंडलाकार समूह होते हैं। नर्तकों के हाथ एकांतर क्रम में कमर के पीछे गुंथे रहते हैं।

-1-

पोसतू का छुमा, मेरी भग्यानी बौ,
पोसतू का छुमा।
आज की छोपती मेरी भग्यानी बौ,
रै तुमारा जुम्मा।
घुगूती को घोल, मेरी भग्यानी बौ,
घुगूती को घोल।
रूपसी गिचीन, मेरी भग्यानी बौ,
तू रौनक खोल।
अखोड़ू का डोका, मेरी भग्यानी बौ,
अखोड़ू का डोका।
रै तुमारा जुम्मा, मेरी भग्यानी बौ,
हम अजाण लोका।

डॉ. गोविंद चातक के अनुसार छोपती के प्रश्नोत्तर बहुत कुछ गायकों की मन-स्थिति तथा अवसर पर निर्भर करते हैं। हवा के झोंके की भांति उनका प्रवाह जिधर झुक गया, उधर ही चल पड़ता है। आरम्भ में उसका कोई रूप निर्धारित नहीं होता। गीत किस दिशा में मुड़ पड़ेगा, यह प्रश्नों के भाव पर और उत्तरों की प्रवृति पर निर्भर करता है। इसीलिए छोपती के संवाद प्रेम की अनुकूल और प्रतिकूल दोनों दिशाओं की ओर अभिमुख हो सकते हैं।

छोपती गीतों में प्रणय-निवेदन, सौंदर्य-वर्णन, विलास के स्वर की प्रधानता होती है। प्रेम की प्राप्ति के लिए किये गये संघर्ष और सहे गये कष्टों का भी इनमें वर्णन होता है।

-2-

दाळ ध्वैतै छ्वीलो, पिरुली पाणी पीजा पाणी
दाळ ध्वैतै छ्वीलो।
तेरा बाना होये, पिरुली पाणी पीजा पाणी
शरीर को क्वीलो।
पाळिंगा की डाळी, पिरुली पाणी पीजा पाणी
पाळिंगा की डाळी।
तेरा बाना खाये, पिरुली पाणी पीजा पाणी
तेरा बुबा की गाळी।
काटी त कूरो, पिरुली पाणी पीजा पाणी
काटी त कूरो।
तेरा बाना बण्यूं, पिरुली पाणी पीजा पाणी
कूटम को बूरो।
सेंदूक का खाना, पिरुली पाणी पीजा पाणी
सेंदूक का खाना।
सोना को होयों पित्तल, पिरुली पाणी पीजा पाणी
पिरीत का बाना।

2.1 चांचड़ी

चांचड़ी, पूर्वोत्तर गढ़वाल और पश्चिमोत्तर कुमाऊं के नृत्यगीत हैं। चांचरी और दाकुड़ी नाम भी प्रचलित हैं। चर्चरी नाम का उल्लेख कालिदास कृत नाटकों में भी मिलता है। हजारीबाग (बिहार) में

विरहे को चांचर कहा जाता है जबकि ब्रज में चांचर, वसंतोत्सव और होली में गाया जाता है। निश्चित रूप से कहा जा सकता है कि ये उत्तराखण्ड के सर्वाधिक पुरातन लोकगीत/लोकनृत्य हैं। डॉ. डी.डी.शर्मा का मानना है कि चांचड़ी का आयोजन केवल लोकोत्सवों के अवसर पर ही किया जाता है। पर देखा गया है कि इनका आयोजन सामुदायिक और पारिवारिक आयोजनों के अवसर पर भी किया जाता है। मुख्य गायक जो कि इस नृत्य का वाद्य-वादक भी होता है, घेरे (मंडल) के केन्द्र में खड़े होकर गीत की ध्रुवीय पंक्ति (टेक) को उठाता है जिसे समूह के अन्य सदस्य दोहराते हैं। चांचड़ी नृत्य अधिकतर मंडलाकार किया जाता है। दो अर्द्धमंडलाकार समूहों में संवाद रूप में भी चांचड़ी नृत्यगीत किया जाता है।

प्रो. देव सिंह पोखरिया की चांचड़ी गीतों पर, सुंदर-सटीक टिप्पणी है कि चाँचरी श्रम-परिहार, मनोरंजन और आशुकवि के अभिव्यक्ति-कौशल की वह मधुर गुंजार है, जो विविधरंगी पुष्पों से पुष्पित, प्रकृति के उद्यान से सुरभि लेकर दिगदिगंत को सुरभित करती है।

-1-

नाच नाच चंद्रावती चांदन की चौकी
कैसो नाचूं कैसो खेलूं रूठी छौं मैं बूठी
ब्याळि दीने पाँव पोलिया कां गै छै बुआरी
ब्याळि गै छौ देवि का द्यूल भेंटुलि चढ़ाई
ब्याळि दीने नाक नथुली कां गै छै बुआरी
ब्याळि गै छौ देवि का द्यूल भेंटुलि चढ़ाई
ब्याळि दीने गौळा हँसूली कां गै छै बुआरी
ब्याळि गै छौ देवि का द्यूल भेंटुलि चढ़ाई

-2-

भोळ जाण घासीला, छो छम ले।
बिनसर का डाँडा, छो छम ले।
मुल्या खोळै की दीद्यो, छो छम ले।
मल्या खोळै की भुल्यो, छो छम ले।
बासी धार्यान रोटी, छो छम ले।
सौदी लगाया भुज्जि, छो छम ले।
हे दीदी! हे भुल्यो!
भोळ जाण घासीला, छो छम ले।

क्वी दाथी पल्याळा, छो छम ले।
क्वी घास काटला, छो छम ले।
क्वी पुळी बाँधाला, छो छम ले।
क्वी भारो लगाला, छो छम ले।
भोळ जाण घासीला, छो छम ले।
बिनसर का डाँडा, छो छम ले।
भोळ जाण घासीला, छो छम ले।
दाथी छुणक्याली, छो छम ले।
कमर बाँधी च, छो छम ले।
स्योंर की सिराणी, छो छम ले।
कमर कसीं च, छो छम ले।
हे दीदी! हे भुल्यो!
भोळ जाण घासीला, छो छम ले।
बिनसर का डाँडा, छो छम ले।

2.2 सारांश

किसी समाज या क्षेत्र के जनमानस का अतीत इतिहास में भले ही दर्ज़ न हो पाए पर लोकगीतों में वो अवश्य ही प्रतिबिम्बित होता है। मांगल, बाजूबंद, झुमैलो, चौंफला, थड्या (थडिया), छोपती व चांचड़ी गढ़वाली लोकगीतों के कुछ प्रमुख प्रकार हैं। मांगल विवाहादि शुभ कार्यों तथा पूजन अवसरों पर गाये जाने वाले लोकगीत हैं। बाजूबंद पटबंद शैली के प्राचीनतम गढ़वाली लोकगीत हैं। इन्हें मूलत-निर्जन वनों में घास काटते हुए महिलाओं द्वारा गाया जाता है। वनों से गुजरते हुए पथिक भी गायन में शामिल होते हैं तो ये गीत संवादात्मक हो जाते हैं। झुमैलो गीत वसंत ऋतु में गाये जाते हैं। प्रकृति का वासंती सौंदर्य और मायके की खुद इनका प्रमुख वर्ण्य विषय होता है। चौंफला लोकगीतों के नामकरण का आधार डॉ. हरिदत्त भट्ट शैलेश रति, हास, मनुहार और अनुनय इन चार फलों के होने को बताते हैं। पर चौंफला नामकरण का वास्तविक आधार पाँच वर्णयुक्त चार चरणों वाले छंद का प्रयोग होना है। थाड़ या थौड़ गढ़वाली में चौरस जगह को कहते हैं। आंगन-चौक के लिए भी ये प्रयुक्त होता है। वसंत ऋतु में जब शीत का प्रकोप कम हो जाता है, तब आंगन-चौक में थड्या या थडिया गीत-नृत्यों का आयोजन किया जाता है। वृत्ताकार घेरे में किए जाने वाले इस गीत-नृत्य में वर्ण्य-विषय पौराणिक से लेकर समकालीन तक होता है। छोपती, उत्तरकाशी सीमांत क्षेत्र के शृंगारप्रधान लोकगीत हैं। वसंतपंचमी से वैशाख माह तक ये लोकगीत गाये जाते हैं। छोपती का पहला पद निरर्थक पट होता है। इसके बाद स्थायी (टेक) आता है। छः वर्णों वाले पदों का प्रयोग होने से इन्हें छोपती नाम दिया गया है। चांचड़ी, पूर्वोत्तर गढ़वाल

और पश्चिमोत्तर कुमाऊं के नृत्यगीत हैं। चांचरी और दांकुड़ी नाम भी प्रचलित हैं। चर्चरी नाम का उल्लेख कालिदास कृत नाटकों में भी मिलता है। निश्चित रूप से कहा जा सकता है कि ये उत्तराखण्ड के सर्वाधिक पुरातन लोकगीत हैं। डॉ. डी.डी.शर्मा का मानना है कि चांचड़ी का आयोजन केवल लोकोत्सवों के अवसर पर ही किया जाता है। पर देखा गया है कि इनका आयोजन विभिन्न सामुदायिक और पारिवारिक आयोजनों के अवसर पर भी किया जाता है।

लामण, झोड़ा (झूड़ा) उत्तरकाशी जनपद के रवांई क्षेत्र के लोकगीत हैं। तांदी इसी क्षेत्र का लोक नृत्य-गीत है।

2.3 शब्दावली

खुद	- व्यथित करने वाली मधुर-स्मृति।
चकरधर	- चक्रधर जुयाल टिहरी रियासत के दीवान थे। उत्तराखण्ड के जलियांवाला कांड के नाम से प्रसिद्ध तिलाड़ी कांड के खलनायक।
तिलाड़ी	- रवांई क्षेत्र का एक स्थान।
बान देना	- मंगलस्नान के समय वर/वधू को दूर्वादल से हल्दी पहनाना।
मांगल	- मंगल-कामना और आशीष भाव के लोकगीत।
स्वागिण्यूं	- सुहागिन स्त्रियाँ
न्यूतू	- निमंत्रण
लालठूंठी	- लाल चोंच वाला
माद्यो	- महादेव
कागा	- काग, कौआ
चौदिसो	- चारों ओर
दूद भाती	- खीर
जौ-जस	- यश-ऐश्वर्य
खोळी	- पौर (भवन का मुख्य नक्काशीदार काष्ठ-प्रवेशद्वार)
हलदानी बाड़ी	- हल्दी की क्यारी
पैयाँ	- पद्मवृक्ष
मंगलेनी	- मंगलगान करने वाली महिलाएँ
वीर्यो	- आयोजन

सुफल फल्यान - फलदायी हो
बीजी जावा बीजी - जागो-जागो हे
खतरी - क्षेत्रपाल
खैंडो - तलवार
पंडौऊं - पांडव
कांठ्यों - पर्वत-शिखर
उदंकारो - प्रकाश
ऐंच - ऊपर
नीस - नीचे
बाजूबंद - पटबंद शैली के लोकगीत।
जाई - जौ की प्रजाति का अनाज
बाँज - चारापत्ती वाला वृक्ष, Oak
कटदारी - काटने वाली
नौनी - लड़की
गौं - गाँव
कूळा - कूल
पूळा - घास का छोटा गट्ठर
छाळा - स्वच्छ
डाँडूं को - पर्वतों का
सुलपा - चरस
साज - चिलम
नाथुलि - नथ
गल्वाड्यों - गालों
दाथी - हँसिया
सिराणा - सिरहाना
घट - पनचक्की
भग्वाड़ी - पिसाई के रूप में पनचक्की मालिक को दिया जाने वाला पिसा हुआ आटा
रुबसी - सुघड़, सुंदर
खुट्यून - पैरों से
अग्वाड़ी - आगे
सज - शोभा

रोणू-धोणू - रोना-धोना
छोया - सोता (जलस्रोत)
झुमैलो - झुमैलो टेक वाले लोकगीत।
ऐ गेन - आ गयी है
बौड़ीक - लौट कर
बारा - बारह
फ्यूंलड़ी - फ्यूंली, बसंत में खिलने वाला पीले रंग का फूल
राडा - सरसों
रडवाड्यों - सरसों के खेत
रिंगळी होली पिंगळी - रंग-बिरंगी होगी
माळ - तराई का क्षेत्र
मैत्यूं कि तिर - मायके की ओर
सैसर - ससुराल
ब्वारी - बहू
ब्वई - ब्वे, माँ
निर्मैतीण - जिसके मायके में कोई सगा-सम्बंधी न हो
डेळी-डेळ्यों - देहरी-देहरी पर
म्वारी - मधुमक्खी
रुणाली - गुँजन करना
झपन्याली - घने पत्तों वाला
हिलांस - सुरीला पक्षी, कोयल
कांद - कंधा
हळसुंगो - हल
हळ्या - हलवाहा
पुगड्यों - खेत
मेंडल्यों मा - मेंडों में
बुरांस - एक जंगली वृक्ष जिस पर वसंत में लाल पुष्प खिलते हैं। (Rhododendren)
आग भभराली - आग का जलते हुए आवाज करेगी।
चौंफला/चौंफुला - पद-संचालन के चपल लास्य वाले लोकगीत/लोकनृत्य।
नाँदु - ननदी
दादु - भाई

कां जायुं च - कहाँ गया हुआ है
बीसार - बिसार, नाक का आभूषण
गढ़ौंदो च - गढ़वा रहा है
बौ - भाभी
जीकुड़ि - दिल, हृदय
हँसुलि - नाक का आभूषण
झुरौंदो - झुराता है
थड्या/थडिया - थाड़ अर्थात् चौड़ी-समतल जगह में किया जाने वाला लोकगीत/लोकनृत्य।
रितुड़ी - ऋतु
सुणमुण्या - सुहावनी
बाळो बसंत - किज़ोर वसंत
गाडू की - नदी तट की (निचले क्षेत्र की)
सेरा की मींडोली - खेत की मेंड
ढिस्वाली - ऊपरी/पहाड़ी की तरु
चीण्योला - चिनाई/चुनाई करना
सत्तन - आशीष से
द्यू करा धुपाणो - धूप-दीप करो
चार्योंला - सिंचित करना
अनमन भाँति - अनोखा
मोयेण - मोहित
धौली - अलकनंदा नदी
धुमेली - धुंधली
सरोख्या - योग्य
छोपती - छ:वर्णी पद वाले लोकगीत/लोकनृत्य।
भग्यानी बौ - भागवान भाभी
जुम्मा - जिम्मे, हिस्से
घुगूती - फाख्ता पक्षी, Dove
घोल - घोसला
अखोड़ू का डोका - अखरोट के पत्ते
अजाण लोक - अनजान लोग
क्वीलो - कोयला

पाळिंगा - पालक
बुबा - पिता
कुटुम - कुटुम्ब
चांचड़ी - पूर्वोत्तर गढ़वाल और पश्चिमोत्तर कुमाऊं में प्रचलित लोकगीत/लोकनृत्य।
रूठी छौं मैं बूठी- आभूषणहीन
पोलिया - पाँव का आभूषण
गै छै - गयी थी
बुआरी - बहू
ब्याळि - बीता हुआ कल
द्यूल - मंदिर
भेंटुलि - भेंट
भोळ - आने वाला कल
घासीला - वह जगह जहाँ ऊँची घास उगती है
मुल्या/मल्या खोळे - उपरी/निचले मोहल्ले की
भुल्यो - छोटी बहिनों
धर्यान - रखना
सौदी - ताजी
क्वी - कोई
पल्याळा - धार देंगी
भारो - बड़ा गट्ठर
छुणक्याली - छुनछुन बजने वाली
स्योंर - रेशे वाली घास
सिराणी - मोटी रस्सी जो घास का गट्ठर बाँधने में प्रयोग की जाती है।

2.4 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

1. जिस गीत को लोक आत्मीयता से अपना लेता है वो ..... हो जाता है।
2. मांगल गीतों में ..... के भाव निहित होते हैं।
3. बाजूबंद के प्रत्येक मुक्तक को ..... या ..... कहा जाता है।
4. झुमैलो गीतों की प्रमुख पहचान ..... टेक है।
5. पदसंचालन का ..... लास्य इस चौंफला नृत्यगीत की विशेषता है।

6. थाड़ या थौड़ गढ़वाली में .....जगह को कहते हैं।
7. छः वर्णों वाले .....का प्रयोग होने से इन्हें छोपती नाम दिया गया है।
8. .....पूर्वोत्तर गढ़वाल और पश्चिमोत्तर कुमाऊं के नृत्यगीत हैं।
9. लामण, छोड़ा और तांदी रवांई क्षेत्र के लोकगीत/लोकनृत्य हैं। (सत्य/असत्य)

उत्तर : 1. लोकगीत 2. मंगलकामना 3. बाजू , दुवा 4. झुमैलो

5. चपल 6. चौरस 7. पदों 8. चांचड़ी 9. सत्य

2.5 संदर्भ सूची

1. गढ़वाली लोकगीत विविधा : डॉ. गोविन्द चातक
2. भारतीय लोक संस्कृति का संदर्भ : मध्य हिमालय : डॉ. गोविन्द चातक
3. गढ़वाल के लोकनृत्यगीत : डॉ. शिवानंद नौटियाल
4. बाजूबंद काव्य : मालचंद रमोला
5. गढ़वाली भाषा और उसका साहित्य : डॉ. हरिदत्त भट्ट 'शैलेश'
6. उत्तराखण्ड के लोकसाहित्य का आयामी परिदृश्य : प्रो. डी.डी. शर्मा
7. गढ़वाली लोकसाहित्य की प्रस्तावना : मोहनलाल बाबुलकर
8. चाँचड़ी-झमाको : डॉ.नंद किशोर हटवाल
9. **Snow Balls of Garhwal** : N.S.Bhandari
10. गढ़वाली लोकगीत, आयाम और विश्लेषण : देवेश जोशी
11. हल्दी हात (मांगल गीत, यूट्यूब पर) : नरेन्द्र सिंह नेगी
12. सुलपा की साज (बाजूबंद, यूट्यूब पर) : नरेन्द्र सिंह नेगी
13. नाच नाच चंद्रावती (चाँचड़ी, यूट्यूब पर) : नरेन्द्र सिंह नेगी
14. पोस्तू का छुमा (छोपती, यूट्यूब पर) : रजनीकांत सेमवाल

2.6 निबन्धात्मक प्रश्न

1. गढ़वाली लोकगीतों के प्रमुख प्रकारों और उनकी विशेषताओं का वर्णन कीजिए।
2. गढ़वाल के उन लोकगीतों के उदाहरण सहित नाम लिखिए जिन पर अर्द्धमंडलाकार घेरे में नृत्य किया जाता है।

इकाई-3

गढ़वाली लोककथाएँ (Garhwali Folktales)

इकाई संरचना

1.1 प्रस्तावना

1.2 उद्देश्य

1.3 लोककथाओं के नाम व वर्गीकरण

1.4 लोककथा-1 (फूल)

1.5 लोककथा-2 (पक्षी)

1.6 लोककथा-3 (लोकोक्ति मूलक)

1.7 लोककथा-4 (बोध कथा)

1.8 सारांश

1.9 शब्दावली

2.0 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

2.1 संदर्भ ग्रंथ सूची

2.2 निबंधात्मक प्रश्न

1.1 प्रस्तावना

गढ़वाल में लोककथाओं के संदर्भ में कथा, कहानी और वार्ता इन तीन शब्दों का प्रयोग होता है। वार्ता मुख्यतः देवी-देवताओं के पौराणिक आख्यान को कहते हैं। कानी जीवन की वास्तविक घटनाओं से सम्बद्ध मानी जाती है और कथा काल्पनिक। गढ़वाली में कणो धातु का अर्थ झूठ बोलना, बात बनाना अथवा कल्पना करना होता है। इसीलिए कथा या तो देवी-देवताओं की होती है या फिर काल्पनिक अतिरंजित विषयों की। इसी तरह वार्ता में बात का भाव प्रधान होता है और कथा तत्व गौण।

कथा, कहानी और वार्ता सुनने-सुनाने के दो रूप होते हैं। एक तो कथाएँ की जाती हैं जैसे सत्यनारायण, भागवत और पुराणों की कथाएँ। इनके पीछे धार्मिक प्रेरणा होती है और ये प्रायः अनुष्ठान के रूप में ही की जाती हैं। इन कथाओं का प्रसंग से सीधा सम्बंध नहीं, क्योंकि वे पढ़कर सुनाई जाती हैं और श्रोताओं का उनके प्रति कथा का भाव नहीं रहता। वह उनके लिए एक धार्मिक कर्त्तव्य-सा होता है। इसी प्रकार वार्ताएं भी केवल धार्मिक समारोहों के अवसर पर सुनाई जाती हैं और उनका आधार भी कोई पौराणिक आख्यान ही होता है। वास्तविक कथाएँ वे होती हैं, जिन्हें बूढ़े और बच्चे विश्राम और कार्य के क्षणों में मनोरंजन के लिए सुनाया करते हैं।

गढ़वाली लोककथाओं का पहला लिखित उल्लेख, गढ़वाल के वरिष्ठ सहायक कमिश्नर ट्रैल के लेखों में मिलता है। ये लेख उन्नीसवीं सदी के तीसरे दशक में रॉयल एशियटिक सोसायटी में प्रकाशित हुए थे। कुछ लोककथाओं का उल्लेख 1833 के गढ़वाल रेवन्यू सेटलमेंट रिपोर्ट में भी मिलता है। राय पं. गंगाधर उप्रेती बहादुर जो लम्बे समय तक गढ़वाल के वरिष्ठ सहायक कमिश्नर रहे, ने गढ़वाल की लोककथाओं की काफी खोजबीन की। उनके नोट्स रिव. ई.एस. ओकले द्वारा संरक्षित किये गये। 1935 में रिव.ई.एस. ओकले और तारादत्त गैरोला द्वारा गढ़वाल, कुमाऊँ अंचल की लोककथाओं, विश्वासों और गाथाओं का अंग्रेजी में अनूदित संकलन हिमालयन फोकलोर नाम से प्रकाशित किया गया।

गढ़वाल लोककथाओं की उर्वर भूमि है। यहाँ की प्रत्येक ऋतु, फूल, पक्षी, नर-नारी की अपनी-अपनी कथाएँ हैं। गढ़वाल में फ्यूंली केवल एक पीला फूल नहीं, वह पहले जन्म की किन्नरी भी है। इन्द्रधनुष केवल आकाश पर खिंची सतरंगी आकृति ही नहीं, किसी प्रणयी के मानस-लोक की स्नेहमयी छाया भी है। ये कथाएँ प्रकृति के साथ ऐसा जीवन-तादात्म्य, जिस सुंदरता के साथ व्यक्त करती हैं, वह उनकी एक बहुत बड़ी विशेषता भी है। इसी तरह असंख्य लोक-कथाएँ जीवन और जन्म सम्बंधी हैं।

वैसे रूपक और प्रतिमान तो प्रायः किसी न किसी रूप में सभी देशों और प्रदेशों की भाषाओं में आते हैं किन्तु गढ़वाली लोक-कथाओं का एक पूरा वर्ग रूपक-कथाओं की श्रेणी में आता है। कुछ लोक-कथाएँ अनुभव की यर्थाथता के कारण कहावतों की जननी कही जा सकती हैं। गढ़वाल में कहावतों को औखाणा कहते हैं जो उपाख्यान का ही एक रूप है।

गढ़वाल का प्राचीन स्वीकृत आदर्श वीर-भाव रहा है। इसलिए ऐतिहासिक कथाओं में वीर-गाथाएँ अधिक मिलती हैं - कफ्फू चौहान, माधो सिंह, जगदेव पँवार, कालू भण्डारी, जीतू तथा रिखोला ऐसी ही कथाएँ हैं। भूतों, राक्षसों, परियों तथा पशु-पक्षियों की कथाएँ तो सर्वत्र ही होती हैं, गढ़वाल में भी उनकी कमी नहीं। हास्य की कथाएँ गढ़वाल में मूर्खों की करतूतों से शुरू होती हैं, जहाँ पात्रों को अविवेकशील बताकर उनकी मूर्खता पर व्यंग्य किया जाता है और उचित शिक्षा देने की चेष्ठा की जाती है।

गढ़वाली लोक-कथाएँ स्थानीय लोक-मानस को अपने अनुकूल प्रतिबिम्बित करती हैं। आदिम से आदिम युग के आदर्श मनोभाव, नैतिकता और लोक-जीवन के अवशेष उनमें मिल जाते हैं। आखेट, कृषि तथा सामन्त युग के चित्र इनमें आसानी से देखे जा सकते हैं। यद्यपि वे अतिरंजना, मानसिक उड़ान और अद्‌भुत तत्व से आवृत होती हैं, फिर भी उनमें सामाजिक यथार्थ, लोक की दृष्टियों, आदर्शों और मूल्यों को चुना जा सकता है।

1.2 उद्‌देश्य

गढ़वाली पाठ्यक्रम की यह अध्ययन सामग्री ऐसे पाठकों के लिए बनाई जा रही है जिन्हें गढ़वाली सीखनी है तथा गढ़वाली भाषा के लोकसाहित्य से परिचित होना है। इस अध्ययन सामग्री में हिंदी आधार-भाषा है। इकाई के अध्ययन के बाद आप -

- गढ़वाली लोककथाओं के संकलन के प्रारम्भिक प्रयास और उनके वर्गीकरण की जानकारी प्राप्त कर सकेंगे।
- इकाई के अध्ययन के बाद आप इस इकाई में सम्मिलित चार गढ़वाली लोककथाओं की कथावस्तु से परिचित हो सकेंगे।

1.6 लोक-कथाओँ के नाम व वर्गीकरण

1935 में प्रकाशित हिमालयन फोकलोर में तारादत्त गैरोला ने लोककथाओं का वर्गीकरण इस तरह किया है -

1 वीर-भड़ों की लोक-कथाएँ
2 परियों की लोक-कथाएँ
3 भूत-राक्षसों की लोक-कथाएँ
4 पशु-पक्षियों की लोक-कथाएँ
5 जादू की लोक-कथाएँ
6 चातुर्य की लोक-कथाएँ
7 गीत और गाथाओं की लोक-कथाएँ

हिमालयन फोकलोर में तारादत्त गैरोला द्वारा संकलित कुछ गढ़वाली लोककथाओं के नाम निम्नवत हैं -

राजा मान शाह, कफ्फू चौहान, काला भण्डारी, सुरजू कुंवर, पंचू ठग, गंगू रमोला, हल की खोज, निरंकार।

डॉ. गोविन्द चातक ने लोककथाओं को 12 वर्गों में वर्गीकृत किया है -

1 देवी-देवताओं की लोक-कथाएँ
2 परियों-भूतों-राक्षसों या चमत्कारों की लोक-कथाएँ
3 शौर्य की लोक-कथाएँ
4 पशु-पक्षियों की लोक-कथाएँ
5 प्रेम की लोक-कथाएँ
6 पर-जन्म की लोक-कथाएँ
7 कारण निर्देशक लोक-कथाएँ
8 लोकोक्ति मूलक लोक-कथाएँ
9 हास्य या मौर्ख्य की लोक-कथाएँ
10 रूपक अथवा प्रतीक लोक-कथाएँ
11 नीति अथवा बोध लोक-कथाएँ
12 बाल लोक-कथाएँ

डॉ. गोविन्द चातक द्वारा संकलित कुछ प्रमुख लोककथाओं का विवरण इस तरह है -

बाघ-बामण, स्याळ अर रिक्क, स्याळ अर हाथी, बाखरी अर बाघ, स्याळ अर भगवान, सरग दिदा! पाणि-पाणि, चकवा-चकवी, कुरेरी (क्रोंच), भूत अर गरीब छोरा, भूत अर सात जनानी, आछरी अर पालसी, चार मूर्ख, पांच राजकुमार, सोने मुंदड़ी, सर्पद्यौ, फुलदे राणि, फ्यूंली, सरग दिदा पाणि-पाणि, मेरी गंगा होली त मैं मू औली, बुढ़ड़ी अर मौत।

अबोध बंधु बहुगुणा के संकलन में सम्मिलित कुछ लोककथाएँ हैं -

लंगड़ी बकरी, सुन्ना दीदी, लिंडरिया छोरा, स्वीली घाम, पटाळ, ढंफड़ी, हरि हिंडवाण, घुघती-बसोती, काफल पाको, तीला बाखरी।

फ्यूंली, सरग दिदा पाणि-पाणि, मेरी गंगा होली त मैं मू औली, बुढ़ड़ी अर मौत लोककथाएँ इस इकाई में अध्ययनार्थ सम्मिलित हैं।

1.4 लोक-कथा - 1 (फूल विषयक)

फ्यूंली

कखि कै डांडा, एक घणौ बण छौ। वख रंदी छै एक बण-कन्या। तैंकी मुखड़ी मा छयो सुरीज, पीठी मा चंद्रमा। सोना जसि गिंदी छै, धार जसो फूल। वींकि मुखड़ी से बुरांसी रीस लांदी छै। वींकि काळी धोंपेली छै नाग-सी। खैंडाधार-सी तड़तड़ी नाकड़ी छै, ओंठड़ी दाड़मी फूल-सी। नौं छौ वींको फ्यूंली। मनख्यों को नौं-निसाण नि छौ वै बण मा। बण का चखुला अर जीब फ्यूंली का भै-बैणा अर कुटुम्बी छा। वीं धरती पर कबि मनखीकि काळि छाया नि पड़ि छै। यान कखि लोभ नि छौ, सोग नि छौ। वा चखुला-जीबों का बीच खेलणी रंदी छै। वो सब्बि भि वीं से भौत प्रेम-भौ रखदा छा।

एक दिन वा एक छीड़ा नजीक बैठीं छै। तबारि कैका औणौ खड़कु ह्वे। फ्यूंलीन् देखि - क्वी मर्द छौ। वीन नि जाणि कि वो राजकुंवर छौ। राजकुंवर तिसाळो छौ पर फ्यूंली देखीक वो पाणि पेण बिसरिगे। फ्यूंलीन् पूछि - सिकार करण आयों छ? राजकुंवरन् बोलि - हँ, पर मिलि नी छ। फ्यूंलीन् बोलि - तुम यख बटि भैर चलि जा। यो मेरो आश्रम छ। यखा सब्बि जीब अर चखुला मेरा भै-बैणा छन। यख क्वी कै तैं नि मारदो। राजकुंवर एक डांग मा बैठीक सुस्ताण लगे। तबरि रुम्क ह्वेगे। कखि हौर जाणै बक्त नि छै। राजकुंवर वखि बासा रैगे। देखदे-देखदा बण-जीब कन्दमूल-फल लेकि ऐग्या। फ्यूंली अपणा ओड्यार भितर चलिगे। राजकुंवर एक डाळा निस स्ये गाई। दुसरा दिन सबेर राजकुंवर उठि त वैका मन मा एक विचार आयि। वैन फ्यूंली तैं बोलि - मि त्वै तैं अपणि राणि बणौण चांदो। मैं दगड़ा चल। फ्यूंलीन् ना बोल दीनि। कु जाणि मन मा बैठीं को स्यांणि छै जीन वा चलबिचल ह्वेगे। वा राजकुंवर दगड़ा चलिगे।

राजमहल मा आयि त सारो ऐश्वर्य वींका खुट्यों मा छौ। बावन-बिंजनी भोज खाणक अर लाणक रेशमी लत्ता अर जेवर। टौल-खिदमत का वास्ता दासी छै। जतौणौ तैं अख़्यार छौ अर दिखौणौ तैं ऐश्वर्य। कुछ दिन वा खूब खुस रै। पर वैका बाद वा उकताण लगिगे। महल मा चखुला अर जीब नि छा। मनखि छा। लोभ-लालच छौ। ऐश्वर्य को बनौटी जाळ छौ अर झूठी चलक-मलक। वा उदास होण लगि। राजकुंवरन् वींका खातिर सब्बि इंतजाम करि पर वा खुस नि ह्वे सकि अर एक दिन दुख्यारि ह्वे गयी। एक दिन वींन राजकुंवर मा बोलि - अब मैंन नि बचण। तुम मेरि आखिरी इच्छा पूरि करला? राजकुंवरन बचन दीनि। फ्यूंलीन् बोलि - कभि डांडि-कांठ्यों मा जौला त मेरा भै-बैण्यूं तै ना मार्या। अर मी तैं वीं डांडि पर खड्ये देया जख मी तुम तैं मिलि छौ। इथगा बोलीक फ्यूंली मरिगे। राजकुंवरन् वा वीं हि डांडि मा वखि मू खड्ये दीनि जख वा पैलि बार मिलि छै। फ्यूंली का भै-बैणा रोण बैठ गैनि। कुछ दिन बाद वख कैका हुनकणै आवाज सुणैणि। जख मूं फ्यूंली खड्याये गै छै। वख मूं एक डाळि जामिगे छै। वीं डाळि पर एक निरसिलो-सी फूल जरमे। फ्यूंली का भै-बैणोन् देखि त भटयाई - फ्यूंली.....ली.....ली!

1.5 लोक-कथा - 2 (पक्षी विषयक)

सरग दिदा! पाणी, पाणी

एक गौं मा तीन झणोंको एक मवासो रैंदो छौ। एक बुडीड़, एक वींकि नौनी अर एक नौनाकि ब्वारी। नौनी अर ब्वारी द्वी जोड़ी-सौंजड़ी कि छै। ब्वारी लाटी अर कामकुटू छै। नौनीकि अज्यूं ब्योकि छ्वीं नि होई छैं। मैड़ी का लाड़ मा पलेणी छै वा। यान वीं तैं निफिक्री छै पर दुय्यों मा कामै होड़ रंदी छै लगीं।

एक दिन ऊंकि दैं छयी। ऊंन पैलि त ग्यौंका बालड़ा खल्याण मा धोळीन फेर बळदूंकि जोड़ी मेलीन अर ऊंका घिच्चों पर मुश्का बांदीक रिंगौण लै गैन। तबरि दिन मुंड मा ऐगे। मांडणक भौत छयो। जेठ का घामन बळ्द खलाण लैगेन अर पसीनान् लतपत ह्वे गैन। तब जैक बुडीड़ भैर आये अर वींन बळ्द फुंडु मेलणक बोली। बळ्द द्वी-द्वी हात लम्बी जीब करीक खलाणा छया। बुडड़ीन बोले - यूं सणि भिंडी तीस लगी गये। जावा मेरियों, पाणी पिलाइ आवा। पाणी जरा दूरू पर छयो अर नणद भौज कभी छुयों पर ही मेसे जांद छयी। याँन जान कि बेलम ना हो बुडड़ीन ऊं लालच दिने - जु अपणी जोड़ी तैं पैली पाणी पिवेक लाली वीं तैं मीं खाणूक तसमै दिऊलू।

नणद चड़म उठे। भौज रिसाणै। वींन मरक्वाल्या बळ्द की तरौं वीं पर हेरे अर अपणा बळ्द सरपट बुरकैन। नणद चिरड़ेणे। वींन भी आपणी बळ्दू जोड़ी तेजी से हांकण लगाये तबरै के। छट्टी पर छट्टी बरखैन। पर भौज का बळ्द तबरी कक्खि पौंछिगे छा। ऊं सणी छोपी सकणो वीं तैं असंभौ मालूम पड़ै। पाणी को ताल गौंका पल्या पाखा पर छयो। नणद सोचण लगे, तसमै अब वींई मिलण। तब कु जाणी वीं कि क्या मति फीरे कि वींन अपणा बळ्द अदबाट बिटी ही बौड़ाई दीनी अर तन्नि तिसोका ही खुंटा पर बांधी दीनी।

ब्वेन नौनी तैं तसमै दीनी। ब्वारीन नणदै छ्वीं नि लगाई। जब खाणू खयालि, भौजन् नणद मा बोलि - नन्दा! तसमै त तिन खैइ याले। अब, चल तौं बळ्दूं तैं पाणी त पिलेयाल। पर अब क्या होई सकदो छौ। भित्र देखदा क्या कि तिसोको बळ्द घिरचेणू छौ। वो मरी गये। इनो बोल्दन कि मरदी दौं वैंन नणद तैं सराप दिने कि जा तू पंछी ह्वे जै अर मेरी हि तरां तीसी तड़फदी रई। वा नौनी तब पंछी ह्वे गये। तब बिटे वा तिसोका बळ्दै तरां तीसी रंदे। जेठ का धड़ांदी दोफरी मा वा आगास से पाणी मांगदी रंदी - सरग दिदा! पाणी, पाणी। धरती को पाणी वा नि पेंदी। वे मा वीं तैं बळ्द को खून दिखेंद।

1.6 लोक-कथा - 3 (लोकोक्ति मूलक)

मेरी गंगा होली त मैं मू औली

मनखी मर गीन। बोल रे गीन।

बात भौत पुराणी छ। कु जाणी कै पर्व को दिन छौ। मकरैण या बिखौत रै होली। या त सैत बसंत पंचमी रै हो। चंडीघाट पर लोग अस्नान का वास्ता आयां छा। कै दिन पैलि बिटी ही देस-देस का राजा गंगा का छाला पर ऐग्या छा। अच्छी से अच्छी जगा पौणै होड़ छै। गंगा का छाला पर जथा जगा छै, वीं पर जगा-जगा का राजौन् अपणा-अपणा डेरा जमैलि छा। गढ़वाल को धर्मात्मा राजा, मेदिनी शाह देर मा पौंछि। वै सणि गंगा का छाला पर अफु सणि क्वी जगा नि दिखेणि। आखिर लाचारी मा वै तैं अपणु डेरू, छाला से दूर बण मा लगौण पड़े।

बात सादारण छै। पर हौर रजौन ठट्टा करि। जंगली रज्जा हि जु ठैरी। कु जाणी कै औरून भी वा बात सूणी या ना, पर बात उड़ीक राजा का कंदुड़ों तक भी पौंछ गे। रज्जान सूणी अर चुप ह्वेगे। पर मंत्री से नि रयेणि। रज्जान मंत्री तैं समझायी कि यां मा बुरू मानणै क्या बात छ। बोलण दे मंत्री। भग्त की सच्ची सरधा का वास्ता गंगा को छालो अर सुनकार बण बराबर ही छ। बिना भौ की भग्ति नि होंदी। वो होर गंगछाला को पुन्न कमावोन। मैं तैं त यखी मू हि संतोष छ। मेरी गंगा होली त मैं मू औली।

मंत्री चुप ह्वे गए। मंत्रीन सोचे कि राजा तैं इथा दूरू होणौ दुख किलै नी छ। दिन बीते। तबरी अचाणचक अगास गिड़के। बिजली किड़के अर सांज को अंध्यारो घणो ह्वे गए। रज्जान बोलि छौ कि मेरी गंगा होली त मैं मू औली। अर उन्नै ही ह्वे भि गए। सबुक तैं या आश्चर्य की बात छै पर रज्जा तैं कै बात को आश्चर्य नि छौ। वो त इन्नो हि बोल्द छौ। सरधा अर विश्वास से क्या नि ह्वे सकदो। गंगा मेरी छै तभी त मैं मू आये।

1.7 लोक-कथा - 4 (बोध कथा)

बुडीड़ अर मौत

एक छै बुडीड़। वीं को क्वी नि छयो। बुडीड़ बड़ि कठणाई मा जिन्दगी गुजारणी छै। एक
दिन वा लाखड़ू का वास्ता बण जाई छै। भारो गरो छयो। थकीक वींन एक जगा मा भारो बिसाये अर दुखी ह्वेक भगवान तैं सुमरे - हे भगवान! मैं तैं मौत किले नि देन्दू? इना ज्यूण से मरणो भलो।

बुडड़ी को मौत बोलण छौ कि मौत बुडड़ी का सामणि ऐक खड़ी ह्वे गये। क्या बात छ? वींन पूछे। मैं मौत छऊं। त्वैन मैं कैक समळयूं? बुडड़ीन देखे कि मौत सामणि खड़ि छ। जिन्दगी मा चा कथगै दुख होउन पर मरण को चांद। मौतन फेर पूछे - बोल बुडड़ी मैं कैक समळयूं? मैन क्या कन्न? बुडड़ीन डरीक बोले - कुछ ना। जरा मेरो लाखड़ों भारू मेरा मुण्ड मा उठाई दे। मौतन हैंसदा-हैंसदि लाखड़ों को भारो बुडड़ी का मुण्ड मा उठाई दिने। बुडीड़ अपणा बाटा लगगे। मौत देखदी रै गये।

1.8 सारांश

फ्यूंली

कहीं किसी पर्वत पर एक घना जंगल था। वहाँ रहती थी एक वन-कन्या। उसके चेहरे पर सूरज था, पीठ पर चंद्रमा। सोने की गेंद-सी थी, किसी चोटी पर खिले हुए फूल-सी। उसके चेहरे से बुँरास भी ईर्ष्या करते थे। उसकी काले बालों की वेणी नाग की तरह थी। तलवार की धार-सी नुकीली नाक थी, ओंठ दाड़िम के फूल-से। मनुष्यों का उस वन में नामोनिशान नहीं था। वन के पंछी और जीव ही फ्यूंली के भाई-बहिन और परिजन थे। उस धरती पर कभी मनुष्य की काली छाया नहीं पड़ी थी। इसलिए न कहीं लोभ था न कहीं शोक। वो पशु-पक्षियों के साथ खेलती रहती थी। वे भी उससे प्रेमभाव रखते थे।

एक दिन वो एक झरने के पास बैठी हुई थी। तभी किसी के आने की आहट हुई। फ्यूंली ने देखा कि कोई पुरुष था। उसे ये पता नहीं था कि वो कोई राजकुमार है। राजकुमार प्यासा था पर फ्यूंली को देख कर वो पानी पीना भूल गया। फ्यूंली ने पूछा - शिकार करने आए हो? राजकुमार ने कहा, हाँ पर मिला नहीं। फ्यूंली बोली, आप यहाँ से बाहर चले जाओ। ये मेरा आश्रम है। यहाँ के सभी पशु-पक्षी मेरे भाई-बहिन हैं। यहाँ कोई किसी को नहीं मारता। राजकुमार एक चट्टान पर बैठ कर सुस्ताने लगा। तभी शाम ढल गयी। कहीं और जाने का समय नहीं था। राजकुमार रात वहीं ठहर गया। देखते ही देखते वन के जीव कंदमूल फल ले आए। फ्यूंली अपनी गुफा के अंदर चली गयी। राजकुमार एक पेड़ के नीचे सो गया। दूसरे दिन, सुबह राजकुमार उठा तो उसके मन में एक विचार आया। उसने फ्यूंली से कहा - मैं तुम्हें अपनी रानी बनाना चाहता हूँ। मेरे साथ चलो। फ्यूंली ने मना कर दिया। कौन जाने मन में क्या अभिलाषा रही होगी कि वो विचलित हो गयी। वो राजकुमार के साथ चल दी।

राजमहल में आयी तो सारा ऐश्वर्य उसके चरणों तले था। खाने के लिए बावन व्यंजन थे, पहनने के लिए वस्त्र और आभूषण। सेवा के लिए दासियां, जताने के लिए अधिकार और दिखाने के लिए ऐश्वर्य। कुछ दिन वह बहुत खुश रही। पर जल्दी ही वह ऊब गयी। वहाँ पशु-पक्षी नहीं थे। उनका जैसा स्नेह भी नहीं था। आदमी थे, लोभ और लालच था। ऐश्वर्य का बनावटी जाल था और थी झूठी चमक-दमक। वह उदास रहने लगी। राजकुमार ने उसके लिए सभी भोग जुटाये पर वह खुश न रह सकी। और बीमार पड़ गयी। एक दिन उसने राजकुमार से कहा, अब मैं नहीं जीऊंगी। मेरी आखिरी इच्छा पूरी करोगे? राजकुमार ने हामी भरी। फ्यूंली ने कहा - कभी शिकार खेलने पहाड़ पर जाओ तो मेरे भाई-बहिनों को मत मारना। और मुझे उसी पहाड़ की चोटी पर गाड़ देना जहाँ से तुम मुझे लाये थे। फ्यूंली मर गई। राजकुमार ने उसे पहाड़ की चोटी पर गाड़ दिया। उसके भाई-बहिन रो उठे। लेकिन कुछ दिनों बाद वहाँ

प्राणों की एक सिसकी सुनाई दी। जहाँ उसे गाड़ा गया था, वहाँ एक पौधा उग आया। उस पर एक पीले रंग का उदास-सा फूल खिला। उसके भाई-बहिनों ने ऊँची आवाज़ में पुकारा - फ्यूंली.....ली.....ली!

आकाश दानी दे पानी

किसी गाँव में एक छोटा-सा तीन जनों का परिवार रहता था - एक बुड़िया, एक उसकी लड़की और एक उस घर में नई-नई आई बहू। लड़की और बहू दोनों हमउम्र थी। बहू भोली और कर्मठ थी। बेटी का अभी ब्याह नहीं हुआ था। माँ के दुलार में पल रही थी। इसलिए स्वभाव में एक बेफिक्री थी और चुलबुलाहट भी। दोनों में काम की होड़ रहती थी।

एक दिन उनकी दाँय थी। उन्होंने गेहूँ की बालियाँ खलिहान में फैलायी, फिर बैलों की जोड़ियाँ खोली और उनके मुँह पर मुश्के बांध कर घुमाने लगीं। बालियों का ढेर बड़ा था, देखते ही देखते सूरज सिर पर चढ़ आया। जेठ की गरमी में बैल हाँफने लगे और पसीने से लथपथ हो गये। बुड़िया बाहर आई तो उसने बैलों को खोलने के लिए कहा। बैल हाँफ रहे थे। बुड़िया बोली - इन्हें बहुत प्यास लगी है। पानी पिलाकर ले आओ। पानी जरा दूर था। ननद-भाभी बातों में उलझी रह कर वहीं देर कर देती थी। इसलिए बुड़िया ने प्रलोभन दिया - जो अपने बैलों की जोड़ी को पहले पानी पिलाकर लाएगी, उसे मैं खाने को खीर दूंगी।

ननद उठी। भाभी भी लपकी। उन्होंने मरखुने बैलों की तरह एक-दूसरे को देखा। भाभी ने अपने बैल पानी के ताल की ओर हांके। ननद चिढ़ गयी। उसने भी अपने बैल तेजी से हांके। उन पर खूब बेंत भी बरसाये। पर तब तक भाभी के बैल काफी आगे निकल गये थे। उनसे आगे पहुँचना उसे असम्भव-सा लगा। पानी का ताल गाँव के दूसरे पाख पर था। ननद को लगा कि अब तो खीर भाभी को ही मिलेगी। तब न जाने उसकी क्या मति फिरी कि उसने अपने बैलों की जोड़ी आधे-रस्ते से ही लौटा दिए। और प्यासे बैल खूंटों पर बाँध दिए।

माँ ने बेटी को खीर दी। बहू ने ननद की शिकायत नहीं की। खाना खा कर भाभी ने ननद से कहा - नन्दा! खीर तो तूने खा ही ली। अब चल बैलों को पानी पिला दें। लेकिन तब तक देर हो चुकी थी। गोठ में एक बैल दम तोड़ रहा था। वह मर गया। कहते हैं, मरते हुए उसने ननद को शाप दिया - जा तू चिड़िया हो जा और जीवन भर मेरी तरह पानी के लिए तड़पती रह।

वह लड़की चिड़िया बन गयी। तब से वह, उस बैल की तरह, प्यासी, तड़पती रहती है। जब जेठ की दुपहरी, तवे-सी तपती है तो वह, सरग दिदा! पाणि, पाणि (आकाश भैय्या! पानी दे, पानी) बोल

कर आकाश से पानी मांगती रहती है। धरती का पानी वह नहीं पीती। उसमें उसको बैल का खून दिखाई देता है।

मेरी गंगा होगी तो मेरे पास आएगी

इंसान मर जाते हैं। बातें रह जाती हैं।

बात बहुत पुरानी है। न जाने कौन से पर्व का दिन रहा होगा। मकरसंक्रांति या बैसाखी रही होगी। या शायद वसंतपंचमी। चंडीघाट पर लोग स्नान के लिए आए हुए थे। कई दिन पहले से देश-विदेश के राजा गंगा किनारे आ गये थे। सभी में अच्छी से अच्छी जगह पाने की होड़ लगी हुई थी। गंगा किनारे जितनी जगह थी उस पर जगह-जगह के राजाओं ने अपने डेरे जमा लिए थे। गढ़वाल का धर्मात्मा राजा देर में पहुँचा। उसे गंगा किनारे अपने लिए कोई जगह नहीं दिखी। आखिर लाचारी में उसे अपना डेरा गंगातट से दूर एक जंगल में लगाना पड़ा।

बात साधारण थी। पर दूसरे राजाओं ने हँसी उड़ायी। जंगली राजा ही जो ठहरा। पता नहीं किसी और ने भी वो बात सुनी कि नहीं, पर बात उड़ते हुए राजा के कान में भी पहुँच गयी। राजा ने सुना और चुप रहा पर मंत्री से नहीं रहा गया। राजा ने मंत्री को समझाया, इसमें बुरा मानने की क्या बात है। बोलने दो मंत्री। सच्ची श्रद्धा वाले भगत के लिए गंगातट और सुनसान-जंगल बराबर ही है। बिना भाव के भक्ति नहीं होती। वो लोग गंगातट का पुण्य कमायें। मुझे तो यहीं पर संतोष है। मेरी गंगा होगी तो मेरे पास आएगी।

मंत्री चुप हो गया। तभी अचानक आकाश में गड़गड़ाहट हुई। बिजली चमकी और शाम का अंधियारा घना हो गया। राजा ने कहा था कि मेरी गंगा होगी तो मेरे पास आएगी। और ऐसा ही हुआ भी। सभी के लिए ये आश्चर्य की बात थी पर राजा को कोई आश्चर्य नहीं हुआ। वो तो ऐसा ही बोलता रहा। सच्ची श्रद्धा और विश्वास से क्या नहीं हो सकता है। गंगा मेरी थी तभी तो मेरे पास आयी।

बुड़िया और मृत्यु

एक बुड़िया थी। उसका कोई नहीं था। बुड़िया बड़ी कठिनाई में जिंदगी गुजार रही थी। एक दिन वह लकड़ियों के लिए जंगल गयी हुई थी। बोझा भारी था। थक कर उसने एक जगह पर विश्राम किया और दुखी होकर भगवान को याद किया - हे भगवान! मुझे मौत क्यों नहीं देता है? ऐसे जीने से मौत भली।

बुड़िया का मौत पुकारना था कि मौत बुड़िया के सामने आकर खड़ी हो गयी। क्या बात है? उसने पूछा। मैं मृत्यु हूँ, तूने मुझे क्यों याद किया? बुड़िया ने देखा कि मृत्यु सामने खड़ी है। जिंदगी में चाहे कितने

ही दु:ख हों पर मरना कौन चाहता है। मृत्यु ने फिर पूछा - बोल बुड़िया, मुझे क्यों याद किया? मुझे क्या करना है? बुड़िया ने डरते हुए बोला - कुछ नहीं, बस जरा ये लकड़ियों का गट्ठर उठा कर मेरे सर में रख दो। लकड़ियों का गट्ठर लेकर बुड़िया अपने रास्ते चले गयी। मृत्यु देखती रह गयी।

1.9 शब्दावली

भड़ - योद्धा, स्याळ- सियार, रिक्क - रीछ/भालू, सरग - आसमान,

आछरी - अप्सरा/वन-परियां, पालसी - चरवाहा, बुढ़ीड़ - बुढ़िया, रिक्क - रीछ/भालू, स्वीली घाम - चरवाहा, पठाळ - चरवाहा, घुघती - फाख्ता पक्षी, काफल - जंगली फल, फ्यूंली - पीला फूल

2.0 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

1. गढ़वाल में लोककथाओं के संदर्भ में कथा, कहानी और .....इन तीन शब्दों का प्रयोग होता है।
2. गढ़वाली लोककथाओं का पहला लिखित उल्लेख, गढ़वाल के वरिष्ठ सहायक कमिश्नर .....के लेखों में मिलता है।
3. रिव.ई.एस. ओकले और तारादत्त गैरोला द्वारा गढ़वाल, कुमाऊँ अंचल की लोककथाओं, विश्वासों और गाथाओं का अंग्रेजी में अनूदित संकलन .....नाम से प्रकाशित किया गया।
4. कफ्फू चौहान की लोककथा .....द्वारा संकलित की गयी है।
5. आछरी अर पालसी लोककथा .....द्वारा संकलित की गयी है।
6. स्वीली घाम लोककथा .....द्वारा संकलित की गयी है।
7. राजकुमार से विवाह होने पर फ्यूंली बहुत प्रसन्न थी। (सत्य/असत्य)
8. बैलों ने प्यासा रखे जाने के कारण बुढ़िया की बेटी को श्राप दिया था। (सत्य/असत्य)
9. गंगा गढ़वाल के राजा के पास नहीं आयी। (सत्य/असत्य)
10. बुढ़िया सचमुच मरना चाहती थी। (सत्य/असत्य)

उत्तर- 1. वार्ता 2. ट्रैल 3. हिमालयन फोकलोर 4. तारादत्त गैरोला 5. डॉ.गोविन्द चातक

6. अबोध बंधु बहुगुणा

2.1 संदर्भ ग्रंथ सूची

1. Himalayan Folklore : Rev. E.S. Oakley, Tara Dutt Gairola

2. गढ़वाल की लोक-कथाएँ : डॉ. गोविन्द चातक
3. हरी दूब : डॉ. हरिदत्त भट्ट 'शैलेश'
4. गढ़वाली भाषा और उसका साहित्य : डॉ. हरिदत्त भट्ट 'शैलेश'
4. लंगड़ी बकरी-गढ़वाली लोककथाएँ : अबोध बंधु बहुगुणा
5. गढ़वाली भाषा की दंत कथाएँ : चक्रधर बहुगुणा
7. चिट्ठी (लोक-कथा विशेषांक) : संपा. मदन मोहन डुकलाण

2.2 निबन्धात्मक प्रश्न

1. गढ़वाल के संदर्भ में कथा, कानी और वार्ता का अंतर स्पष्ट करते हुए गढ़वाली लोककथाओं को लिपिबद्ध करने के प्रारम्भिक प्रयासों का वर्णन कीजिए।

2. किन्हीं दो गढ़वाली लोककथाओं का हिंदी भावानुवाद लिखिए।

इकाई-4

गढ़वाली लोकगाथा साहित्य

(Garhwali Ballads)

इकाई संरचना

1.1 प्रस्तावना
1.2 उद्देश्य
1.3 गढ़वाली लोकगाथाओं का इतिहास एवं स्वरूप
1.4 गढ़वाली लोकगीतों का वर्गीकरण
1.5 जागर गाथा
1.6 वीरगाथा या पवाड़ा
1.7 प्रणय गाथा
1.8 चैती गाथा
1.9 सारांश
2.0 शब्दावली
2.1 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर
2.2 संदर्भ ग्रंथ सूची
2.3 निबंधात्मक प्रश्न

1.1 प्रस्तावना

लोकगाथा या कथात्मक गीत, अंग्रेजी में 'बैलेड' (Ballad) शब्द से अभिहीत है। इसकी व्युत्पत्ति लैटिन भाषा के 'वेप्लेर' शब्द से हुई है, जिसका अर्थ है नृत्य करना। कालांतर में इसका प्रयोग केवल लोकगाथाओं के लिए किया जाने लगा। अंग्रेजी साहित्यकार इसकी ओर अधिक आकृष्ट हुए और यह अंग्रेजी साहित्य का लोकप्रिय काव्यरूप बन गया।

लोकगाथा की परिभाषा करते हुए विभिन्न विद्वानों ने भिन्न-भिन्न विचार प्रकट किये हैं किन्तु परिभाषाओं में कुछ सर्वमान्य तत्व विद्यमान हैं। लोकगाथा के विषय में कुछ प्रमुख विद्वानों के विचार इस प्रकार हैं-

प्रो0 क्रिटकिन का कहना है - "Ballad is a song that tells a story or to take anotherr point of view, a story told in song".
लोकगाथा वह गीत है जो किसी कथा को कहता है। दूसरी दृष्टि में वह कथा है जो गीतों द्वारा कही जाती है। डॉ0 मरे ने लोकगाथा को साधारण स्फूर्तिदायक कविता कहा है, जिसमें कोई आख्यान जनप्रिय ढंग से वर्णित रहता है।

लोक समाज के विभिन्न पहलुओं को लोकसाहित्य चरितार्थ करता है। लोकगाथाएँ गढ़वाली लोक साहित्य की धरोहर हैं। ये लोकगाथाएँ गढ़वाल के जीवन और जगत को अपने ढंग से समझने का द्वार खोलती हैं। लोकगाथाओं के लोककथात्मक आख्यानों से हमें गढ़वाल के गौरवशाली ऐतिहासिक अतीत की जानकारी मिलती है। इनमें हमारे इतिहास, पौराणिक मान्यताओं लोक विश्वासों और जीवनशैली का परिचय भी मिलता है।
लोकगाथा गायन के साथ नृत्य भी होता है। ये लोकप्रिय आख्यान को रोचक ढंग से वर्णन करने वाली कविता है। इजलट ने लोकगाथा को गीतात्मक कथानक कहा है।

डॉ0 सत्येन्द्र ने लोकगाथा में ऐतिहासिक बिन्दु की सत्यता को प्रामाणिक माना है उनका मत है कि ऐतिहासिक बिन्दु से हमेशा यह मतलब नहीं होता है कि वे यथार्थ में पैदा हुए ही हैं। घटनाओं का क्रम काल्पनिक होता हुआ भी ऐतिहासिक माना जाता है और ऐतिहासिक होता हुआ भी काल्पनिक सिद्ध हो जाता है।

गढ़वाली लोकगाथाओं के सन्दर्भ में कहा जा सकता है कि लोकगाथा, गीत की भाषा में लम्बा रोचक वृतांत है, जिसमें कल्पना और इतिहास साथ-साथ गुंथे हुए हैं। यहां महत्त्वपूर्ण है अपने समय का वह लोकनायक जिसका जीवन और जीवन का प्रसंग लोकगाथा का विषय बना।

1.2 उद्देश्य

गढ़वाली पाठ्यक्रम की यह अध्ययन सामग्री ऐसे पाठकों के लिए बनाई जा रही है जिन्हें गढ़वाली सीखनी है तथा गढ़वाली भाषा के लोकसाहित्य से परिचित होना है। इस अध्ययन सामग्री में हिंदी आधार-भाषा है। इकाई के अध्ययन के बाद आप -

- गढ़वाली लोकगाथाओं की अवधारणा और उनके वर्गीकरण का वर्णन करने में सक्षम हो सकेंगे।

- इकाई के अध्ययन के बाद आप इस इकाई में सम्मिलित गढ़वाली लोकगाथाओं अर्थात जागर, वीरगाथा/पवाड़ा, प्रणयगाथा और चैती गाथाओं के इतिहास स्वरूप, गायन-अवसर व विशेषताओं का वर्णन करने में सक्षम हो सकेंगे।

1.7 गढ़वाली लोकगाथाओं का इतिहास एवं स्वरूप

गढ़वाली लोकगाथाएँ प्राचीन गेय रचनायें है, जिनमें बहुत ही लोकप्रिय आख्यानों का गायन वृतान्त से होता है। लोक में जिस प्रकार वाचिक परम्परा से लोकसाहित्य की कहावतें आणा पखाणा, भ्वीणा आदि विधाएं सदियों की यात्रा करके वर्तमान तक पहुँची हैं उसी प्रकार लोकगाथा भी पहुँची हैं।
गढ़वाली लोकगाथाओं में मुख्य रूप से परम्परागत, पौराणिक धार्मिक तथा वीरतापूर्ण आख्यान मिलते हैं। धार्मिक गाथाएँ जिन्हें जागर भी कहा जाता है। जागर पूजा-पद्धति गढ़वाल के आदिम निवासियों की पूजा-पद्धति है। लोकगाथाओं में वेद-पुराणों और ब्राह्मण ग्रन्थों के अंश भी मिलते हैं। गढ़वाल की जागर गाथाओं में कृष्ण, राम, देवी, निरंकार, गौरिल, रमोल, पाण्डव आदि की धार्मिक और पौराणिक गाथाएँ शामिल है। इनमें पौराणिक देवता भी हैं और स्थानीय देवता भी।

जहां तक वीरगाथाओं (पवाड़ों) का प्रश्न है, वे मध्यकाल में ही रची गयी। गोविन्द चातक का मानना है कि गढ़वाली वीरगाथाएँ, विभिन्न युद्धों से सम्बंधित हैं। इनका कालखण्ड 800 ई0 से 1700 ई0 के बीच का है। गढ़वाली वीरगाथाएँ अतिरंजनापूर्ण अवश्य हैं किन्तु उनमें ऐतिहासिक सामग्री का अभाव नहीं है।

अनेक गढ़ों में बँटे गढ़वाल के सामन्त सत्ता के लिए आपस में खूब लड़ते रहे। ये लड़ाइयां सामन्तों ने स्वयं लड़ी या उनके भड़ों ने। इन्हीं भड़ों की गाथा पवाड़ा कही जाती है। गढ़वाल की अधिकांश वीरगाथाएँ अजयपाल (1358 ई0), मानशाह (1547 ई0), गुरू ज्ञान चंद (1668 ई0) तथा कत्यूरी राजाओं के राज्यकाल (850 से 1050 ई) के समय के भड़ों से सम्बन्धित हैं। इस काल की गाथाओं की प्रचुरता का एक कारण राज्याश्रयी भाटों का होना है। इन भाटों ने न सिर्फ़ पवाड़ों का सृजन किया बल्कि सामन्तों से सम्बंधित प्रणय गाथाएँ भी रची। सामंतवादी परिस्थितियों में महिलाओं के साथ घटित होने वाले करुण घटनाक्रम को इन्हीं गाथाकार भाटों ने चैती गाथाओं के रूप में अमर किया।

4.3.1 गढ़वाली लोकगाथाएँ अर्थ एवं स्वरूप

गढ़वाली लोकगाथाओं को समझने के लिए सबसे पहले गाथा शब्द का अर्थ जानना आवश्यक है। गाथा अत्यन्त प्राचीन शब्द है। ब्राह्मण ग्रंथो में गाथा शब्द का प्रयोग आख्यानों के लिए हुआ है। प्राचीन, पालि, मागधी और प्राकृत भाषाओं में गाथा साहित्य अपनी समृद्धि के साथ विकसित हुआ।

डॉ0 कृष्ण बलदेव उपाध्याय ने लोकगाथा को इस प्रकार परिभाषित किया है- 'लोकगाथा वह प्रबन्धात्मक गीत है, जिसमें गेयता के साथ ही कथानक की प्रधानता है। फ्रैंक सिजविक लोकगाथा को सरल वर्णनात्मक गीत मानते हैं जो लोकमात्र की सम्पत्ति होती है और जिसका प्रसार मौखिक रूप से होता है।

4.3.2 गढ़वाली लोकगाथाओं की उत्पत्ति के सिद्धान्त

लोकगाथाओं की रचना कब और किसने की इस विषय में विद्वानों में मतभेद हैं और इन प्रश्नों से लेकर कोई धारणा सर्वमान्य नहीं हो पायी। लोकगाथाओं की उत्पत्ति को लेकर विभिन्न विद्वानों के जो सिद्धान्त प्रतिपादित हुए कदाचित गढ़वाली लोकगाथाओं के सन्दर्भ में वे सटीक बैठते हैं।

1. ग्रिम द्वारा प्रतिपादित समुदायवाद के सिद्वान्त के अनुसार-गाथाओं की रचना न तो किसी व्यक्ति द्वारा हुई है और न ही किसी कवि विशेष ने ही इन्हें रचा है। ये स्वतः स्फूर्त रचना है। इनकी रचना का श्रेय समुदाय को है। लोकगाथा जनता द्वारा, जनता के लिये जनता की कविता है। गढ़वाली लोकगाथाओं के सम्बन्ध में यह सिद्धान्त सटीक है।

2. व्यक्तिवाद के प्रवर्तक श्लेगल का मानना है कि कविता का रचियता कोई न कोई अवश्य होगा। कविता कवि द्वारा ही रची जाती हैं

3. स्टेन्थल का मत है कि सभ्य अर्द्धसभ्य जातियों के समूह एक स्थान पर एकचित होकर उत्सव मनाते हैं। इस प्रकार वे गीत बनाते और गाते जाते हैं। इस तरह जातियों द्वारा लोकगाथाएँ रची गयी।

4. चारणवाद के प्रवर्तक विशप पक्षी का कथन है कि चारण या भाटों द्वारा गेय कथाओं की रचना की गयी। इसी प्रसंग में प्रोफेसर काल का कथन है कि मौखिक परम्परा के काल में चारण, गीतों की रचना करते थे और उदरपूर्ति के लिए गाँवों में भागते-फिरते थे।

5. व्यक्तित्वहीन वाद के प्रवर्तक प्रो0 चाइल्ड मानते हैं कि-'लोकगाथाओं की रचना व्यक्ति द्वारा की गयी है। रचना में आगे चलकर परिवर्तन होता रहता है। इस प्रकार के परिवर्तन से मूल लेखक का व्यक्तित्व विलीन हो जाता है और रचना जनसाधारण की सम्पत्ति बन जाती है।

उपरोक्त सिद्धान्तों के अध्ययन के उपरान्त गढ़वाली लोकगाथाओं के सम्बन्ध में स्पष्ट रूप से कहा जा सकता है कि समष्टि की सृजनात्मक भावना जो कि समुदाय की सुख दुख, राग द्वेष की प्रवृत्तियां हैं। इन्हीं के द्वारा भावों के रूप में गाथाओं का सृजन हुआ ही है लोकगाथा की रचना का आधार है।

4.3.3 गढ़वाली लोकगाथाओं की विशेषताएं

गढ़वाली वीरगाथाएँ, पौराणिक समय और संस्कृति की संवाहक हैं। ये अपने काल की धरोहर हैं। इन लोकगाथाओं में लोक विश्वास और इतिहासपरक घटनाओं की विशेष भूमिका है। भाषा की अपनी स्थानीयता के कारण लोकगाथाओं के गायन की लय में विविधता हो सकती है, लेकिन भावनात्मक सुन्दरता में कोई भिन्नता नहीं है। गढ़वाली लोकगाथाओं की विशेषताएं निम्नवत हैं-

1. लोक की रचना- लोकगाथा के रचियता का नाम गाथा के साथ कहीं नहीं मिलता है। लोकगाथा की अपनी जीवन जात्रा में प्रसंग से जुड़ते सटीक शब्द गाथाओं में जुड़ते रहे और आगे बढ़ते रहे।

2. वाचिक परम्परा-गढ़वाली लोकगाथाएँ मौखिक परम्परा के आधारभूत स्रोत हैं। गाथाएँ कहीं लिपिबद्ध नहीं मिलती गाथा गायकों को वे कंठस्थ हैं। लोकगाथाएँ पीढ़ी दर पीढ़ी एक कंठ से दूसरे कंठ में पहँचती रही हैं।

3. गाथाओं का दीर्घ कथानक-गढ़वाली लोकगाथाओं के कथानक इतने लम्बे मिलते हैं कि एक ही पवाड़े में रात खुल जाती है। पवाड़ों को रात में गाने की परम्परा है। लम्बे कथानक वाली गाथाएँ श्रोताओं द्वारा बड़े मनोयोग से सुनी जाती हैं। कई गाथाएँ संवादों में बुनी होती है। वे संवाद भी गेय होते हैं उन्हें गाकर कहा जाता है कतिपय गाथाओं में नाटकीयता होती है। कई गाथाओं को गायक अपने सुर के आरोह-अवरोह से बहुत ही रोचक बना देते हैं।

4. स्थानीय प्रभाव- गढ़वाली लोकगाथाओं की मौखिक परम्परा के कारण उनमें श्रेत्रीयता का प्रभाव स्पष्ट दिखता है जिससे गाथा का पाठान्तर भी होता है और साथ ही कई स्थानों पर स्थानीय प्रतीक और बिम्ब भी स्पष्ट दिखते हैं।

5. लोक संगीत और नृत्य की एकरूपता-गढ़वाली लोकगाथाओं में लोक संगीत और नृत्य उसके अविभाज्य अंग हैं। जागर गाथाएँ ढोल-दमौ, डौंर थाली और हुड़का थाली के वादन के साथ गाये जाते हैं जबकि पवाड़े विशेष रूप से ढोल-दमौ में गाये जाते हैं जिन पर लोग ताल आधारित नृत्य भी करते हैं।

6. कथानक में अति मानवीय और अति प्राकृतिक तत्वों की प्रचुरता- जीवन के यथार्थ भाव को प्रस्तुत करती इन गाथाओं में अतिमानवीय प्रवृति का समावेश मिलता है। डॉ0 गोविन्द चातक के अनुसार देवगाथाओं में अतिमानवीय प्रवृति का समावेश एक स्वाभाविक प्रक्रिया है। अपने नियम को प्रतिपादित करने के लिए व्यक्ति अतिमानवीय तथा अतिप्राकृतिक शक्तियों का आश्रय लेता है।

1.4 लोकगाथाओं का वर्गीकरण

गढ़वाली लोकगाथाओं मे प्राचीन काल के विविध आख्यान मिलते हैं जो विविधतापूर्ण है। लोकगाथाओं का वर्गीकरण, गाथा की विषय वस्तु के आधार पर किया जा सकता है।

गढ़वाली लोकगाथाओं में मोहनलाल बाबुलकर ने गाथाओं के दो भेद देवगाथा व लोकगाथा देखे जबकि डॉ0 गोविन्द चातक ने गढ़वाली लोकगाथाओं के चार भेद बताये -

1. जागर गाथाएं या धार्मिक गाथाएँ
2. पवाड़े या वीर गाथाएँ
3. प्रणय गाथाएँ और
4. चैती गाथाएँ।

1.5 जागर गाथा

जागर शुद्ध संस्कृत शब्द है। कालीदास के रघुवंश और महाभारत के जागर पर्व प्रसंग में इसका उल्लेख हुआ है। रात्रि में जागरण कर अथवा किसी माध्यम के ऊपर दैवी शक्ति को जागृत करने के लिए गाये जाने वाले गीत सामान्यतः जागर कहलाते हैं। जागर गीत और गाथा दोनों रूपों में मिलते है। जागर गाथाएँ अमूमन दैवी शक्ति के आह्वान तथा माध्यम को देवता के रूप में नचाते हुए जागरी पुरोहित अथवा औजी वादक द्वारा गायी जाती है। कृष्ण जन्म की जागर गाथा इस तरह है -

कृष्ण जन्म

सभा लैगे द्वारिका सभा लैगे गोविन्द
सोवन द्वारिका होली, सभा लैगे गोविन्द
सभा बैठी गेन, तेतीस करोड़ देवता
सभा बैठी गेन सोल सोउ राणी
इनो रइ भागीवान गर्वियों का गर्व चलैन
पाप्यों का माचद पा, बिर्बालियों को छैं बल
राण्यों को रौंसिया छई, फूलू कू हौंसिया
धनि पारबरम, मै लेन्दू तेरू नौं
तेरो नौं लीक संकट कटेन्दो बिपता बंटेदी
दुख होन्दू दूर काया होंदी कंचन
इना रैग भगीवान् रांडू का मालिक
छौरौं का बाप, अनाथू का नाथ
नांगों देखी वस्त्र नी लायो
भूखा देखी अन्न नी खायो
तिन लिने जन्म देवकी का कोख
देवकी की कोख कंसकोट राज मा
वैरियों की भूमि, मामा की मथुरा
माता तेरी देवकी, पिता वसुदेव

सुण्याला कंसू तुम देवकी आठवां गर्भ
होण कंसू को छै
एक गर्भ होये तौन नदी सौंप करे
दूजो गर्भ होये तौन नदी सौंप करे
तीजो चौथो पांचों सातों गर्भ होये
तौन नदी सौंप करे
तब ह्वैन भगवान आठवां गर्भ
तेरी जिया देवकी एको लगै मास
तेरी जिया देवकी दूजो लगै मास
कंस कोट राज मां बुरो ठाण्याले
कंस कोट लग अब शीश को मेलाण
सौ मन शीशा की गागर बणैले
चलीगे देवकी तब निकट जुमना
ल्यौ बैणी देवकी गागर भरी
नौ दिन नौ राती गागर नी भरेणी
भरेण क भरेगी मैं कनै उठौलू?
कायरी होइगे देवकी राणी
इन रया भगवान निरणी को बालो
सु गर्भ छुई लांदो
सुन लिया कायरो नी होणू
ते दिन देवकी राणी गागर उठौंदी
इनी माया तेरी भगवान
कनी ह्वैगे गागर बुरांस को सी फूल

1.6 वीरगाथा या पवाड़ा

गढ़वाल में वीर गाथा के लिए पवाड़ा शब्द का प्रयोग होता है। गढ़वाल के पवाड़े मध्यकाल की रचनायें हैं। उदाहरणार्थ कफ्फू चौहान का पवाड़ा। यह गाथा अजयपाल और कफ्फू चौहान के बीच हुए युद्ध का वर्णन है, जिसकी काल अवधि 1358 ई0 है। जैसे-

गढ़ू सुमर्याल

खिमसारी हाट रन्दो गढ़ू स्यो सुमर्याल
माळों मा को माळ होलो, वो सुमर्याल
तरवरिया माळ होलू, गढ़ू त सुमर्याल
जैका बाबू दादान, तरवार मारे,
वेको बैटा भी, तरवार मारी ल्यालो
खिमासारी हाट मा, पड़े धुरमी अकाल
तड़फी-तड़फी मरीन, लोक उखड़ सा माछा
जागू-जागू पड़ीन, डाला का सा गेंडा
स्वागीण रांड़ हवेन कोळी का मारीन बाला
ज्वानी नी भुंचा कैन, जिन्दगी नी भोगी
तडपी-तड़पी करी, कमाई सब खाई याले
भूख मरण लैगे, गढ़ सुमन्याल
चल मेरी जिया लीला देई
आरूणी जंगल जौला, जड़ी बूटी खौला
माता लीक तब गढ़ू माळ ऐगे आरूणी जंगल
जिया लीला देई तब, बोलण लै गये
कनो कुलोबलो वण छ, देखदौं मेरा गढ़ू
सुणदौ दीपीकोट मा रन्दो, तुमारो दीपू
तू लीजा वख मेरी नौ लाख हँसुली
अपणा बड़ा मुंगै, भैंसी लीऔ मोल
आरूणी जंगल मा दूध पर दिन बितौला
तिन ठीक बोले मेरी जिया
धरे गढ़ू माळन, नौ लाख हंसुली
जाई लगै तैं दीपीकोट मा
ओ मेरे जदेउ मान्यान, तुमि मेरा बड़ा जी
खिमासारी हाट मा, पड़ीगे अकाल
मेरी जियान दिने, या नौ लाख हंसुली
तुम देवा बड़ा जी, मैं भैंसी दुधाल
दीपू बडान तब, गढ़ू की आदर करे खातर
पकाये मालक, निरपाणी की खीर
सुतपुल्या घीउ दिने, पौंडल्या दई
खिलाये-पिलाये वैन, गढ़ू सुमन्याल

तब दीपून मन्सूबा ठाणों, मन्त्र किराये
बुलाया तब वैन, वैका सात लड़ीक
हे मेरा बेटों, ये मारी द्यान
नितर येई छुटेड़, भैंस क्वी द्यान
बाटा लैग्या स्ये, दीपू का साती सपूत
तब बोलदू दीपू, जा मेरा गढ़ू माळ
डांडा मरूढ़ी होली लैंदी भैंसी
तब अगाड़ी फुंडू, बाटा लगे गढ़ू माळ
साती भायों का मन मा, कपट सूझीगे
गाड़ीन साती, गंगलोड़ी हात
पर विधाता की माया देखा
तब गढ़ू सुमन्याल की भुजा नलकदाब
आंखी फफरांदी, तब वा वैकी
क्या जी होई होलो, यो सगुन
तब घूमीक पिछाड़े, देखदू गढ़ू सुमर्याल
भलू करे भायों, तुमून मैं नी मारयों
तुम सातों भाई मेरा, कौजाड़ा मुंगक नी छा
तब चली गैन, वीं डांडा मरोड़ी
दिखाए साती भयोंन भैंसी एक छुटेड़
या च मेरा दिदा भैंसी दुधाल
सात पथा सबेर देंदी या सात पथा सांज
उठैं गढ़ माळन भैंसी कखरियाली धरीले
रौंड़दो-दौड़दो आरूणी जंगल ऐगे
ले मेरी जिया तेरा जिठाणा को दिन्यूं भैंसो
तब कायरी होन्दी जिया लीला दे
छोड़दी पथेणा नेतर
इना भैंसा मा गै, मेरी नौ लाख हंसुली
सती होली मैं, आपणी माता की जाई
सते होला जु, पंचनाम देवता
त ई भैंसी पर, दूद आई जान
तब आरूणी जंगल वा, जड़ी खलौंदी बूटी
भैंसी पर दूध, पैदा ह्वैगे

गढ़ू माळ तब, चैन की निन्द सेंद
भैंसी चरौंद, दूद घुटकी पेंद
आरूणी जंगल होलू, भलो रौंत्यालु
डांडी-कांठी जनी, मन मोहदी
गढ़ू सुमन्याल होलू उलार्या मुरल्या
मुरली त होली वैकी, जनी जादून भरी
तैं जंगल मा रन्दी छई, सुरमा एक रौतेली
रोज मोहन मुरली सुणदी
मन मा मन्सूबा गणदी
इनी तैकी मुरली अफू कनो होलू?
तब वींको चित्त, ह्वैगे चंचल मन ह्वैगे उदास
दीदी भुल्यों मा कना बैन बोदी
जावा दीदी भुल्यों, तुम घर जावा
मेरी मां मु बोल्यान, सुरमा बाघन खैयाले
जावा मेरी दगड्याण्यों, तुम घर जावा
मेरी मां मु बोल्यान, सुरमा भेल पड़िगे
जावा मेरी जोड़ी सोंजड्यों मैत जावा
मेरी मां मु बोल्यान सुरमा गाड बगीगे
बाबरो ह्वैगे पराण, मुरल्याक की खोज पैठीगे।

1.7 प्रणय गाथा

प्रणय गाथाओं की परम्परा अत्यन्त प्राचीन है। सामान्यतः कथानक के आधार पर गढ़वाली प्रेमगाथाएँ भी सूफी और सूफीतर प्रेमगाथाओं जैसी ही हैं। गढ़वाली प्रणय गाथाओं का घटनाक्रम विचित्र होता है। जैसे स्वप्न में प्रेम का भाव, प्रत्यक्ष दर्शन से मुग्ध होना। नायिका तक पहुंचने की कोशिश, मिलन में बाधा उत्पन्न होना और अंत में नायक नायिका का मिलन होना। जीतू-भरणा की प्रणय गाथा अत्यंत मार्मिक है। जीतू की गाथा का पवाड़ा रूप भी मिलता है। जीतू बगडवाल की गाथा ऐतिहासिक गाथा भी है। जीतू अर्थात् जीतसिंह राजा मानशाह का दरबारी सामंत था। गढ़वाल नरेश की राजाज्ञा से जीतू की गाथा का नृत्य-मंचन बगड्वाली के रूप में प्रत्येक गाँव में आयोजित किया जाता है। राजुला-मालूशाही की प्रणयगाथा उत्तराखण्ड के कुमाऊँ और गढ़वाल दोनों अंचलों में अत्यंत लोकप्रिय है। जीतू-भरणा की प्रणयगाथा का अंश इस तरह है -

जीतू-भरणा

जीतू त होलो बगूड़ी को सिरताज़
ह्वेगे तरुणो जो ब्वे-बाबु का लाड मा
गाड घटूड़ी छै धार मरूड़ी
अनमातो छौ धनमातो जोवन मातो
रंगमातो भौंर होलू जीतू राण्यों को रौंसिया
राण्यों को रौसिया, फूलू को हौंसिया
बणू मा रंद रिडणू बांसुळी लीक
वैकी बांसुली सूणी डांडी कांठी बीजदी छै
जिया ब्वे सूणदी वैकी बांसुळी निंद नी आंदी
हे मेरा जीतू केक होई तू इनु बावरो पराण
मेरा बेटा, तिन कै दिन खता खै जाण
त्वे ह्वेगीन घऽर ते बण प्यारा
हमारी सेरी कन बांजी रैगे
तब जीतसिंह धावड़ी लगौंदू
यख औ दूं मेरा भुला सोभनू
लुंगळा को दिन भुला त्वेन लौण
तब जांद सोभनू जोसी का पास
देखद पातड़ो जोसी गात ह्वेगे काळो
मेरा जजमान तुमारा हात नी जुड़द दिन
तुमारी होली वा बैण सोभनी ज्वा
वीं का हात जुड़दो लुंगळा को दिन
सूणीक जीतू को मन ह्वेगे परफूल

मैं जाण होलू सोभनी भुली बैदोण
बिसर्यूं-सी स्वीणो जनो याद आये
खुदायों-सी द्यौ जनो कुरेड़ी लबटाये
व बैणी सोभनी कनी खुदेंदी होली तै चूळा-कठूड़
कबी मैत नी बुलाये कबी रितु नी जणाये
स्याळी की याद जिकुड़ा मा ऐगे
जनी उजाळा-सी मूठ
देखी छै वा कबी बैणी का गऊं
नऊं बतायी छयौ तैन भरणा
भरणा लगदी होली जीतू की स्याळी
तरुणी ह्वेगे होली तोमी जसो फूल
पिंडाळू जसो पात, फ्यूंली जसो गात

न ले मेरा जीतू बिराणी नौनी को बामो
बिराणा बाटा नी जाणु बेटा, बिराणी लाग नी लेणी।
बिराणो बाटो नी पूछण, गाछो नी लाण
अधजग्यूं लाखड़ो कबी नी बचदो
रूप की आग बेटा भली नी होंदी तापणी।
जीतून जिया की आड़ती एक नी माणी
भरणा पर चलीगे वेकी सुर्ता।
तब पैटीगे वो बैणी का गौऊं
चलदो गैगी उच्ची डांड्यों गैरी गदन्यों
पौंछीगे कनो स्यो चोपता चौराड़ी
सजीं होली धरती नौळी ब्योली हो जसी
थौ खाणक बैठी गये उलार्या पराणी
गाड़े नौसुर्या मुरुली, बजौण बैठे
वैकी बांसुळी को स्वोर पौंछीगे खैंटखाळ

छुटिगे खैटन आछर्यों कू दौंर
देखा दौं कु होलो बिगरैलो बैख
उड़ीक ऐगीन पोतल्यों की भिबड़ाट-सी
पंछ्यों की डार-सी वार पार।
जीतू की आंख्यों मा जनो ऐना चमलाणी
जनी रात मा घाम झमलाणी
घिची पेंदी लुबटांदी ओर-पोर
पंख फफड़ांदी फड़फड़, माया की रौंस लगौंदी
तौंन बाटा मा वैकी जिंदड़ी की ज्यान कर्याले।
तब सुमरदो जीतू इष्टदेव अपणा
बीजीगे वो मर्द सेयूं-सी जागी गये
आछर्यों! मैन जाण बैणी बैदोण
तुम मैं तई आज छोड़ी द्यवा
छै गते आसाड़ होलो लंगुळा को दिन
तैं दिन तुम तख आयान
तुम आयान मेरी स्वाणी बगूड़ी मलारी सेरा
मैं लिजान अपणा अगासी ओडार।
तब पौंछीगे जीतू बैणी का पास
मैं आयूं बैणी त्वै बैदोण
तब रमकदी-झमकदी औंदी स्या स्याळी भरणा
दिवा जसी जोत होली भरणा, चीणा जसी दाणी
नौ गज धौंपेली होली नाग-सी लम्बी
आंखी जनी बौ काटदी माछी।
हैंसदी मुल्ल कैकि स्याळी भरणा
दुय्यों की आंख्यों मा दिखेंद माया की छलार।

बजण लै गैन ढोल रोपणी का

पौंछीगे जीतू तै मलारी सेरा
एक फाट फुंडो लांदो एक उंडो
आछर्यों को फफराट ऐगे
डूबीगे स्यूं हळ-जोळ जीतू वखी मू
पंद्रा-पचीसी को बिणास ह्वेग
नि रये वो रूप को रसिया जीतू
पर रैगेन वैका खेल-बोल, धावड़्या मुरली वैकी
रोपणी का ढोल, पौ-पवांण जीतू का नौं को।
रै गये नौं बाबा गरीबा को ब्वे सुमेरा को,
भुला सोभनू बैण सोभनी को।
कनी होली वा स्याळी भरणा, हैंसदी दिप्प मुखड़ी
जीतू दगड़े जैकी होंदी पूजा-पाती, धूप-बाती।
जीतू को घड़्यालो लगदो गौं गौं
बजदा ढोल रोपणी का।

1.8 चैती गाथा

चैती गाथाएं चैत के महीने औजी वादकों द्वारा वृत्ति-परिवारों के गृहद्वार पर गाने की परम्परा रही है। इन गाथाओं में भी प्रेम हैं इसीलिये इन्हें प्रणयगाथाओं की श्रेणी में भी रखा जाता है लेकिन चैती गाथाओं का प्रेम मातृ व भ्रातृ प्रेम के भाव से परिपूर्ण होता है। चैती गाथाओं में सदेई की गाथा चरमोत्कर्ष मानी जाती है।

सदेई

गढ़वाल में चैत के महीने गायी जाने वाली चैती गाथाओं में सदेई का विशिष्ट स्थान है। सदेई की गाथा में दाम्पत्य-प्रेम या परकीया प्रेम का कोई प्रसंग नहीं है। ये गाथा पूरी तरह सहोदर भाई-बहिन के पवित्र प्रेम पर आधाारित है। ऐसा प्रेम जो चरमावस्था में भाई के प्राणों के लिए पुत्रें का बलिदान भी स्वीकार कर लेता है, या आत्मोत्सर्ग भी करवा देता है।

सदेई की गाथा में सबसे पहले सिलंग के वृक्ष का वर्णन आता है। अन्य चैती गाथाओं में

भी सिलंग के वृक्ष का वर्णन अक्सर आता है।

इसी सिलंग वृक्ष के नीचे बैठी हुई है सदेई। जिसका पिता वद्ध है और भाई किशोर। सदेई मायके से बहुत दूर दुर्गम इलाके में ब्याही गयी थी। जहाँ ब्याहने के बाद उसकी कभी खबरसार ली ही नहीं गयी। कुछ दूरी की वजह से और कुछ पारिवारिक परिस्थिति के कारण। खुद से अत्यंत व्यथित रहती थी सदेई जिसे मायके वालों ने निर्मैत्या (जिसके मायके में कोई सगा न हो) बना दिया है। खासकर जब देवरानी-जेठानी मायके जाती तो उसकी खुद-नराई और भी बढ़ जाती थी। और उसके दिल में कोहरा-सा छा जाता था।

हां, बौड़ी ऐन बार मैनों की बार रितु
फूलण लैगेन डांडा की डंड्यूली
डाल्यों कफू चड़ो बासण लैगे
कफू चड़ो बासदो रितु जणौन्द।
ना बास कफू, मैं लगदी खुद मैत की।
हे उच्ची डांड्यों तुम निसी होवा
घणी बणायों तुम छांटी होवा
मैतुड़ा को मैं देस देखण देवा।
निरमैतीण सदेई रोन्दी दणमण
मेरा होन्द कुई मैती, मैं मैत बुलौन्दा
औंदौंऊं की मुखड़ी न्याल्दू जांदौऊं की फिलोड़ी।
न ले बेटा तू सुपिना को बामो
तेरी बैण रंदी वा चौगंगा पार
बरसू बटी नी पाई वी की खबर सार।
वा बिवाई दीनी छै नौ बरस की
तब लाडा तू पैदा नी ह्वै छौ।
तू होलो बेटा बाळो अलबूद।

गाड मेरी मांजी मेरी नौरंग कापड़ी

बणौ मेरी मांजी मैं बाट को कलेऊ
कख होली मांजी मेरी घुंघर्याळि लाठी
पैरोऊ मांजी मैं मोंडुवा पागड़ी।
लौ मेरी मांजी बैणीक समोण
मैंन मरणू बचणू मांजी बैणी बैदोण जाण।

चौंरी मा कनु देखेन्द कुई सुकिलो
धारुड़ी न्यालदी सदेई कु होलो बैख!
वीं की सौत तब कना बैन बोदी
हे सदेई, सिलंग डाली का छैल पार
देख कु नौनो होलो सुकिलो!
स्यो त होलो जनो तेरो-सी भाई
होलो वो पौणू तेरो ही अन्वारी
तब वा कारणा करदी कनी वा
हे मादेव, हे झालीमाली मैत्या देवी
नी रया तुम कखी मेरी दां त!
बड़ी खैरी कैक पाई छयो भाई एक
वो भी नी रखे प्रभो देवन
हे देवी जु तू मेरा भुला बचै देली
त देवी मैं तेरो नौरातू को जग्य करलो
तेरी पूजा करलो त्वै बलि दीक तुसौलो
तब कनी होई लीला देवी की अजगती
बौड़ी ऐन उड़दा पराण, सदेऊ ज्यूंदो ह्वैगे
चचड़ैक उठे वो बैणीका गळा लैगे
हे मेरी दीदी, मैं आज कनी निंद आए।
हे देवी झालीमाली यो क्या मांगे त्वैन
भाई होलो मेरा मैत्या कुल की जोत

भाई बलि द्यूलो त दिशा सूनी होली मेरी
नौना होला मेरा जना जिकुड़ी का टुकड़ा
तौं बलि द्यूलो त कोख सूनी होली मेरी।
हे देवी! कर किरपा आज मैं पर
सबूका बदला मेरी बलि ली ले।
भितर जैक देखदी क्या छ सदेई
दुई नौना वींका हैंसणा छन खेलणा
तब माथो नवौंदी देवी कू सदेई
माता झालीमाली तू दैणी होली मैकू तैं।
धन्य छै तू सफुल फलाई जातरा।
धन्य होली वा बैण सदेई
धन्य होलू वो भाई सदेऊ
धन्य होली बैणी की वा पिरीत
जु हमुन गीत मा गाई।
सदेई का घर जन होई मंगल
होयान तुमकू दिशा धियाण्यों।

गाथा-गायक अंत में कहता है कि जैसे सदेई के घर में सब कुछ मंगल हुआ वैसा ही मंगल, हे दिशा-धियाणियों (बहिन-बेटी) तुम्हारे घर में भी हो।

1.9 सारांश

लोकगाथा या कथात्मक गीत, अंग्रेजी में 'बैलेड' (Ballad) शब्द से अभिहीत है। इसकी व्युत्पत्ति लैटिन भाषा के 'वेप्लेर' शब्द से हुई है, जिसका अर्थ है नृत्य करना। कालांतर में इसका प्रयोग केवल लोकगाथाओं के लिए किया जाने लगा। अंग्रेजी साहित्यकार इसकी ओर अधिक आकृष्ट हुए और यह अंग्रेजी साहित्य का लोकप्रिय काव्यरूप बन गया।

लोकगाथा की परिभाषा करते हुए विभिन्न विद्वानों ने भिन्न-भिन्न विचार प्रकट किये हैं किन्तु परिभाषाओं में कुछ सर्वमान्य तत्व विद्यमान हैं। लोकगाथा के विषय में कुछ प्रमुख विद्वानों के विचार इस प्रकार हैं-

प्रो0 क्रिटकिन का कहना है - "Ballad is a song that tells a story or to take anotherr point of view, a story told in song".

गढ़वाली लोकगाथाओं के सन्दर्भ में कहा जा सकता है कि लोकगाथा, गीत की भाषा में लम्बा रोचक वृतांत है, जिसमें कल्पना और इतिहास साथ-साथ गुंथे हुए हैं। यहां महत्त्वपूर्ण है अपने समय का वह लोकनायक जिसका जीवन और जीवन का प्रसंग लोकगाथा का विषय बना।

गढ़वाली लोकगाथाओं में मुख्य रूप से परम्परागत, पौराणिक धार्मिक तथा वीरतापूर्ण आख्यान मिलते हैं। धार्मिक गाथाएँ जिन्हें जागर भी कहा जाता है। जागर पूजा-पद्धति गढ़वाल के आदिम निवासियों की पूजा-पद्धति है। लोकगाथाओं में वेद-पुराणों और ब्राह्मण ग्रन्थों के अंश भी मिलते हैं। गढ़वाल की जागर गाथाओं में कृष्ण, राम, देवी, निरंकार, गौरिल, रमोल, पाण्डव आदि की धार्मिक और पौराणिक गाथाएँ शामिल है। इनमें पौराणिक देवता भी हैं और स्थानीय देवता भी।

जहां तक वीरगाथाओं (पवाड़ों) का प्रश्न है, वे मध्यकाल में ही रची गयी। गोविन्द चातक का मानना है कि गढ़वाली वीरगाथाएँ, विभिन्न युद्धों से सम्बंधित हैं। इनका कालखण्ड 800 ई0 से 1700 ई0 के बीच का है। गढ़वाली वीरगाथाएँ अतिरंजनापूर्ण अवश्य हैं किन्तु उनमें ऐतिहासिक सामग्री का अभाव नहीं है। लोकगाथाओं की रचना कब और किसने की इस विषय में विद्वानों में मतभेद हैं और इन प्रश्नों से लेकर कोई धारणा सर्वमान्य नहीं हो पायी। लोकगाथाओं की उत्पत्ति को लेकर विभिन्न विद्वानों के जो सिद्धान्त प्रतिपादित हुए कदाचित गढ़वाली लोकगाथाओं के सन्दर्भ में वे सटीक बैठते हैं।

जागर शुद्ध संस्कृत शब्द है। कालीदास के रघुवंश और महाभारत के जागर पर्व प्रसंग में इसका उल्लेख हुआ है। रात्रि में जागरण कर अथवा किसी माध्यम के ऊपर दैवी शक्ति को जागृत करने के लिए गाये जाने वाले गीत सामान्यतः जागर कहलाते हैं। जागर गीत और गाथा दोनों रूपों में मिलते है। जागर गाथाएँ अमूमन दैवी शक्ति के आह्वान तथा माध्यम को देवता के रूप में नचाते हुए जागरी पुरोहित अथवा औजी वादक द्वारा गायी जाती है।

गढ़वाल में वीर गाथा के लिए पवाड़ा शब्द का प्रयोग होता है। गढ़वाल के पवाड़े मध्यकाल की रचनायें हैं। उदाहरणार्थ कफ्फू चौहान का पवाड़ा। यह गाथा अजयपाल और कफ्फू चौहान के बीच हुए युद्ध का वर्णन है, जिसकी काल अवधि 1358 ई0 है।

प्रणय गाथाओं की परम्परा अत्यन्त प्राचीन है। सामान्यतः कथानक के आधार पर गढ़वाली प्रेमगाथाएँ भी सूफी और सूफीतर प्रेमगाथाओं जैसी ही हैं। गढ़वाली प्रणय गाथाओं का घटनाक्रम विचित्र होता है। जैसे

स्वप्न में प्रेम का भाव, प्रत्यक्ष दर्शन से मुग्ध होना। नायिका तक पहुंचने की कोशिश, मिलन में बाधा उत्पन्न होना और अंत में नायक नायिका का मिलन होना।

चैती गाथाएं चैत के महीने औजी वादकों द्वारा वृत्ति-परिवारों के गृहद्वार पर गाने की परम्परा रही है। इन गाथाओं में भी प्रेम हैं इसीलिये इन्हें प्रणयगाथाओं की श्रेणी में भी रखा जाता है लेकिन चैती गाथाओं का प्रेम मातृ व भ्रातृ प्रेम के भाव से परिपूर्ण होता है।

2.0 शब्दावली

परिनिष्ठित - लिखित

अभिजात - सभ्य, सुसंस्कृत

जागर - जागृत करने वाला,

चम्पू - गद्य और पद्यात्मक काव्य

वाचिक - मौखिक

परिमार्जन - शुद्ध करना

दन्तवेद - वाणी द्वारा उच्चरित

पर्यवसान - सार

समाविष्ट - सम्मिलित

प्रादुर्भाव - उत्पत्ति

ध्वन्यांकित - शुद्धता

कपोलकल्पित - मनगढ़ंत

2.1 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

1. लोकगाथा या कथात्मक गीत, अंग्रेजी में शब्द से अभिहीत है।
2. लोकगाथा वह गीत है जो किसी .....को कहता है।
3. किसी माध्यम के ऊपर दैवी शक्ति को .....करने के लिए गाये जाने वाले गीत सामान्यतः जागर कहलाते हैं।
4. पवाड़ा (वीरगाथा) का कालखण्ड .....से 1700 ई0 के बीच का है।
5. थाड़ या थौड़ गढ़वाली में .....जगह को कहते हैं।
6. छः वर्णों वाले .....का प्रयोग होने से इन्हें छोपती नाम दिया गया है।
7. .....पूर्वोत्तर गढ़वाल और पश्चिमोत्तर कुमाऊं के नृत्यगीत हैं।
8. लामण, छोड़ा और तांदी रवांई क्षेत्र के लोकगीत/लोकनृत्य हैं। (सत्य/असत्य)

उत्तर : 1. बैलेड 2. कथा 3. जागृत 4. 800 ई0
5. जागृत 6. चौरस 7. पदों 8. चांचड़ी 9. सत्य

2.2 संदर्भ सूची

1. इंगलिश एण्ड स्काटिश पापुलर वैलेड्स-भूमिका : फ्रेंसिस जेम्स चाइल्ड
2. गढ़वाली साहित्य का विवेचनात्मक अध्ययन : मोहनलाल बाबुलकर
3. लोकवार्ता विज्ञान खण्ड-2 : डॉ0 हरद्वारी लाल शर्मा
4. भारतीय लोक संस्कृति का संदर्भ : मध्य हिमालय : डॉ. गोविन्द चातक
5. गढ़वाली भाषा और उसका साहित्य : डॉ. हरिदत्त भट्ट 'शैलेश'
6. उत्तराखण्ड के लोकसाहित्य का आयामी परिदृश्य : प्रो. डी.डी. शर्मा
7. गढ़वाली लोकसाहित्य की प्रस्तावना : मोहनलाल बाबुलकर

2.3 निबन्धात्मक प्रश्न

3. गढ़वाली लोकगाथाओं के इतिहास, स्वरूप व उनकी विशेषताओं का वर्णन कीजिए।
4. गढ़वाल लोकगाथाओं में से किसी जागर और पवाड़े का संक्षिप्त कथ्य का वर्णन कर उन तथ्यों को रेखांकित कीजिए जिन्हें आप ऐतिहासिक अथवा अतिरंजित समझते हों।

इकाई-5

गढ़वाली लोकनाट्य

(Garhwali Folktheatre)

इकाई संरचना

1.1 प्रस्तावना

1.2 उद्देश्य

1.3 लोकनाट्य वर्गीकरण

1.4 रामलीला लोकनाट्य

1.5 पांडवकथा आधारित लोकनाट्य

1.6 देवी अनुष्ठान लोकनाट्य (बन्याथ, नंदा जात, नंदापाती)

1.7 बेडवार्त

1.8 रम्माण

1.9 पौराणिक-ऐतिहासिक लोकनाट्य व स्वांग

2.0 सारांश

2.1 शब्दावली

2.2 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

2.3 संदर्भ ग्रंथ सूची

2.4 निबंधात्मक प्रश्न

1.1 प्रस्तावना

भरतमुनि कृत नाट्यशास्त्र में लोकधर्मी नाट्य वृत्तियों का संकेत मिलता है। रूपक के दस भेदों में समवकार, व्यायोग, भाण और प्रहसन को लोकधर्मी माना है। शास्त्रीय नाटकों और लोक नाटक में अंतर यह होता है कि नाटक में कथावस्तु, अभिनय करने वाले, रस तथा अभिनय प्रमुख होता है जबकि लोक

नाटक में लोककथा/पौराणिक कथा, गीत, नृत्य, यथार्थ जीवन प्रसंग। लोकनाट्य के लिए किसी विशेष मंच की आवश्यकता भी नहीं होती है। लोकनाट्य की एक विशेषता यह भी होती है कि इसमें पात्रों के शृंगार-प्रसाधन की विशेष आवश्यकता नहीं होती है साथ ही लोकनाट्य की भाषा भी कृत्रिम न होकर लोकव्यवहार की भाषा होती है। प्रख्यात रंगकर्मी बी.जी.कारंत के अनुसार लोकनाट्य के पीछे कोई शास्त्रीय योजना नहीं होती है। ये लोकमानस के प्रतिबिम्ब हैं।

लोकनाट्य एक ओर धार्मिक भावना की परितृप्ति करते हैं, दूसरी ओर सामाजिक मनोरंजन के साधन भी जुटाते हैं। इस प्रकार चाहे धार्मिक आस्था हो या मनोरंजन दोनों ही उद्देश्य वाले व्यक्ति समान रूप से लोकनाट्य का आनंद लेते हैं।

1.2 उद्देश्य

गढ़वाली पाठ्यक्रम की यह अध्ययन सामग्री ऐसे पाठकों के लिए बनाई जा रही है जिन्हें गढ़वाली सीखनी है तथा गढ़वाली भाषा के लोकसाहित्य से परिचित होना है। इस अध्ययन सामग्री में हिंदी आधार-भाषा है। इकाई के अध्ययन के बाद आप -

- गढ़वाली लोकनाट्य के धार्मिक व लौकिक दोनों प्रकारों के स्वरूप का वर्णन करने में सक्षम हो सकेंगे।
- गढ़वाली लोकनाट्य के प्रकारों से परिचित हो सकेंगे तथा गढ़वाली लोकनाट्य के विभिन्न प्रकारों अर्थात् रामलीला, पांडवलीला, देवी-अनुष्ठान, बेडवार्त, रम्माण, पौराणिक-ऐतिहासिक नाटक व स्वांग लोकनाट्य के आयोजन अवसरों व अन्य विशेषताओं का वर्णन करने में सक्षम हो सकेंगे।

1.8 गढ़वाली लोकनाट्य का वर्गीकरण

गढ़वाली लोकनाट्य मुख्यतः दो प्रकार का है :-

3. धार्मिक
4. लौकिक

धार्मिक लोकनाट्य के अन्तर्गत निम्नांकित लोकनाट्य आते हैं :-

- रामलीला लोकनाट्य
- पांडवकथा लोकनाट्य (पण्डवार्त, चक्रव्यूह, कमलव्यूह आदि)

- देवी-अनुष्ठान लोकनाट्य (नंदाजात, बन्याथ, नंदापाती)
- बेडवार्त
- रम्माण

लौकिक लोकनाट्य के अन्तर्गत निम्नांकित लोकनाट्य आते हैं :-

- पौराणिक व ऐतिहासिक नाटक
- स्वांग

1.4 रामलीला

रामलीला की शुरुआत भारत में भक्तिकाल (15वीं-16वीं सदी) में हुई थी। तुलसीदास के रामचरितमानस के सृजन के बाद। लोकभाषा में रामायण आने से रामकथा लोक के अधिक समीप पहुँची। उसी समय ये लोकनाट्य के रूप में गढ़वाल भी पहुँची। प्रारम्भिक दौर में रामलीला के अंशों का मंचन हुआ करता था। मंच अर्थात् मुक्ताकाशी मंच। गढवाली रामलीला में लोकनाट्य के तत्व और आधुनिक रंगमंच के अंकुर, दोनों मिलते हैं। रासलीला, नाच, जात्रा, नौटंकी का प्रभाव इस पर जरूर है पर गढ़वाली रामलीला ने इन सबसे उबर कर एक विशिष्ट पहचान बनायी है।

गढ़वाल में रामलीला के विधिवत मंचन की शुरुआत 1870 में श्रीनगर में हुई, मानी जाती है। इसके बाद पौड़ी, टिहरी, उत्तरकाशी, गोपेश्वर, कर्णप्रयाग, रुद्रप्रयाग में रामलीला मंचन होने लगे और फिर गढ़वाल में रामलीला मंचन इतना लोकप्रिय हो गया कि लगभग प्रत्येक गाँव में होने लगा। गढ़वाली रामलीला के मंच की माप लगभग 30x20x20 फीट होती है। तीन ओर से बंद मंच पर सामने की ओर मुख्य पर्दा होता है। मुख्य पर्दे के कुछ पीछे दूसरा पर्दा भी होता है। मंच के सम्मुख रंगभूमि होती है जिसके ऊपर चंदोवा लगा होता है। रंगभूमि के तीन ओर दर्शकों के बैठने का स्थान होता है। निर्देशक के सीटी-संकेत पर पर्दा खोला-बंद किया जाता है। मंच के पीछे ग्रीन रूम होता है। साजिंदे रंगभूमि के एक ओर बैठते हैं, दूसरी ओर अशोक वाटिका बनायी जाती है।

गढ़वाली रामलीला में रामकथा कथानक का बड़ा हिस्सा, गेय पद्यात्मक होता है। नौटंकी के वहरत, राधेश्याम जैसे छंदों का खूब प्रयोग होता है। इनके अतिरिक्त दोहा, चौपाई तथा रागिनी छंद का भी प्रयोग होता है। कथानक के मुख्य अंश रावण की तपस्या, रामजन्म, रामविवाह, वनवास, भरत-मिलाप, सीता हरण, बाली-सुग्रीव प्रसंग, अहिरावण प्रसंग, अंगद-रावण संवाद, राम-रावण युद्ध तथा राम राजतिलक होते हैं।

आंगिक तथा वाचिक दोनों तरह का अभिनय होता है। स्त्री पात्रों का अभिनय भी पुरुष ही करते हैं। गीत-संवाद अधिकतर अभिनय करने वालों को कंठस्थ रहते हैं। संवादों में प्रोम्टर भी कुछ सहायता करता है। शृंगार और मंचसज्जा सामग्री में स्थानीय उपलब्ध उत्पादों का भी प्रयोग होता है।

कुछ जगहों पर संवाद और गेय छंदों में हिंदी और गढ़वाली दोनों भाषाओं का मिश्रित प्रयोग होता है जबकि कुछ जगह विशुद्ध गढ़वाली भाषा में भी रामलीला मंचन किया जाता है। इक्कीसवीं सदी में श्रीनगर और अगस्त्यमुनि में रामलीला मंचन एक और आयाम जुड़ा है और वो है- महिला रामलीला मंचन। इन दोनों जगहों पर आयोजित हो रही महिला रामलीला में व्यवस्थापन से लेकर अभिनय तक सभी पक्ष महिलाओं द्वारा ही संभाले जा रहे हैं। गढ़वाली रामलीला लोकनाट्य में ये प्रयोग खूब लोकप्रिय भी हो रहा है।

1.5 पांडवकथा आधारित लोकनाट्य (पण्डवार्त, चक्रव्यूह, कमलव्यूह आदि)

नृत्याभिनय के द्वारा प्रस्तुत पाण्डवलीला, पण्डवार्त तथा पाण्डवनृत्य के नाम से जानी जाती है। गढ़वाल के अधिकतर गाँवों में पाण्डवलीला का आयोजन पूर्ण आस्था के साथ किया जाता है। आयोजन-अंतराल गाँव की परिस्थिति पर निर्भर रहता है। कहीं प्रतिवर्ष, कहीं तीसरे वर्ष और कहीं अतिवृष्टि, अनावृष्टि व महामारी के परिहार के लिए। आयोजन सामान्यतः माघ मास में किया जाता है। आयोजन अवधि नौ दिन से लेकर एक माह तक होती है। इस लोकनाट्य में संवाद नहीं होते, अंगाभिनय मात्र होता है। पाण्डवनृत्य का आयोजन करने वाले गाँवों में पाण्डवों के निसाण (प्रतीकात्मक अस्त्र-शस्त्र) होते हैं जिनकी विधिविधान से पूजा करके पाण्डवों के पश्वा उन्हें लेकर नृत्य करते हैं। इन निसाणों में युद्धिष्ठिर का धर्मचक्र (तलवार/भाला), अर्जुन का धनुष, भीम की गदा, नकुल की छड़ी, सहदेव की पाटी, द्रोपदी का खड्ग-खप्पर, कुंती की चाँदी की सुई व माला, श्रीकृष्ण का शंख, हनुमान की लाल गदा, नागार्जुन का धनुष-तीर, बभ्रुवाहन की भीम से छोटी गदा, माता फुलारी की फूलों की टोकरी आदि। विशेष बात ये है कि जिस व्यक्ति पर जिस पात्र का अवतरण होता है वह आजीवन रहता है। नृत्य-आयोजन दिन के तीसरे पहर से रात के दूसरे पहर तक चलता है। नृत्यारम्भ में लोकवाद्य वादन के साथ पात्रों में सम्बंधित देवांश प्रतिष्ठित किया जाता है। प्रत्येक पात्र के अवतरण के लिए विशिष्ट वाद्यवादन ताल होती है जिसे बाजा या चाली कहा जाता है। बाजों में ढोल के कुछ पात्रों के बोल इस तरह हैं :-

द्रोपती जैकु जै लाड कु

भीम गिजा गिजड़ी धिना गिता

अर्जुन जैकता तुजड़क जैनाताक

नकुल जैकता तुजड़े

सहदेव जैकता तुजड़क जैनात

युधिष्ठिर जैकता तुजक जैकता ताक

नृत्योपरांत रात्रि में पाण्डवलीला भी आयोजित की जाती है। पाण्डवलीला के अन्तर्गत चक्रव्यूह, कमलव्यूह व मकरव्यूह का आयोजन पूरी नाटकीयता के साथ किया जाता है। इन व्यूह नृत्यों ने अब स्वतंत्र लोकनाट्य के रूप में भी राष्ट्रीय स्तर पर ख्याति अर्जित कर ली है। चक्रव्यूह व कमलव्यूह में क्रमशः अभिमन्यु व जयद्रथ वध का मंचन किया जाता है। पाण्डवनृत्य के प्रसंगविशेषों को स्वतंत्र लोकनाट्य के रूप में रूपांतरित करने व मंचित करने में आचार्य कृष्णानंद नौटियाल, डॉ.डी.आर.पुरोहित व डॉ.राकेश भट्ट का उल्लेखनीय योगदान है। इन सबके प्रयास से इन लोकनाट्यों का मंचन नेशनल स्कूल ऑफ ड्रामा व इंदिरा गाँधी राष्ट्रीय कला केन्द्र सहित देश के कई महानगरों में हो चुका है।

1.6 देवी-अनुष्ठान लोकनाट्य (नंदाजात, बन्याथ, नंदापाती)

परम्परा से गढ़वाल में शैव और शाक्त मतों की प्रधानता रही है। आदि शंकराचार्य द्वारा ज्योतिर्मठ की स्थापना के बाद वैष्णव मत भी स्थानीय लोगों के धर्म-विश्वास का अभिन्न अंग बन गया। पुराणों में जिस हिमवंत देश का वर्णन मिलता है वो गढ़वाल का ही पुराना नाम था जो आगे चलकर केदारखण्ड हो गया था। गढ़वाल में देवियों से सम्बंधित अनुष्ठान प्रत्येक बारह वर्ष के अंतराल में किये जाने की परम्परा है। कुम्भ भी बारह वर्ष के अंतराल में आयोजित किया जाता है। इसका आधार भी स्पष्ट है। देवगुरू बृहस्पति को किसी राशि में पुनःप्रवेश करने में बारह साल लग जाते हैं। देवी-अनुष्ठानों के बारहवें वर्ष आयोजन का आधार ये नहीं है। देव-दानव युद्ध बारह दिन चला था और देवी व असुरों का नौ दिन। ये भी आधार नहीं है। बारह वर्ष के अंतराल के पीछे सबसे तार्किक आधार लोकमानस की बारह माह बाद ऋतु-पुनरावर्तन की सुविज्ञता थी। आई गैन ऋतु बौड़ी दांई जस फेरो के रूप में लोकगीतों में इस सुविज्ञता का प्रमाण भी है। इस तरह से लोक में बारह-अंकीय-अंतराल एक पूर्ण चक्र का पर्याय-सा बन गया। इस तरह, बारह साल बाद देवी-अनुष्ठान के आयोजन का अर्थ है, समय-चक्र का एक फेरा पूरा होना। ये आधार उस पौराणिक मान्यता के भी पूरी तरह अनुरूप है जिसमें देवताओं के एक साल को धरती के बारह साल के बराबर माना जाता है। ऐसा भी कह सकते हैं कि धरती पर जो आयोजन बारह वर्ष के अंतराल पर आयोजित किये जाते हैं वो देवलोक के हिसाब से वार्षिक आयोजन हैं।

नन्दाजात

भाद्रपद मास के शुक्लपक्ष की अष्टमी को नन्दाजात का मुख्य आयोजन सम्पन्न किया जाता है। इसे नन्दाष्टमी भी कहते हैं। लोकआस्था है कि कैलाशवासी शिव को पति के रूप में वरण करने वाली नन्दा (पार्वती) इसी क्षेत्र की पर्वतीय कन्या थी जो प्रतिवर्ष अपनी ससुराल, त्रिशूल पर्वत से श्रावण मास में कुछ दिनों के लिए, अपने बंधु-बांधवों से मिलने के लिए, मायके चांदपुर आती है। नंदाष्टमी के कुछ दिन पूर्व, यहाँ के आबालवृद्ध नर-नारी उसे ऋतु-उत्पादों व शृंगार-सामग्री सहित स्नेहपूर्वक ससुराल के लिए विदा करते हैं। इस वार्षिक अनुष्ठान को 'नंदाजात' कहा जाता है। नंदाजात का मार्ग अलग-अलग क्षेत्रों में अलग-अलग होता है। इन सब में जो तथ्य उभयनिष्ठ है वो ये कि नंदाजात निम्न ऊँचाई वाले क्षेत्रों से उच्च्य हिमालयी पर्वतों के आधारस्थलों तक जाती हैं। नंदाजात का ही एक आयोजन नंदाराजजात के रूप में भी आयोजित किया जाता है। परम्परा से गढ़वाल नरेश इस आयोजन के आयोजक होते हैं। वर्तमान में राजजात को उत्तराखण्ड सरकार का संरक्षण भी प्राप्त है पर आयोजन पूरी तरह पारम्परिक विधिविधान से होता है। 2005 में गणतंत्र दिवस के अवसर पर उत्तराखण्ड की नंदा-राजजात झांकी को भी सम्मिलित किया गया था।

सभी नंदाजातों में जात के मुख्य यात्रियों को नंगे पाँव जात करनी होती है। पीठ पर कंडी में नंदा के लिए मौसमी कृषि उत्पाद व शृंगार-सामग्री होती है और बारिश से स्वयं व सामग्री को बचाने के लिए कंधे पर रिंगाल की छंतोली (छाता) होता है। नंदाराजजात के अवसर पर चौसिंग्या मेंढ़ा (चार सींग वाला भेड़) जात की अगुआई करता है। मेंढे के पीठ पर भी शृंगार-सामग्री अर्पित करने के लिए करबच (फांचा/गूंण) रखा रहता है। नंदाराजजात में कुल 280 किमी की पदयात्रा करनी होती है। यात्रा मार्ग जनपद चमोली स्थित नौटी गाँव से शुरू होकर कांसुवा, सेम, कोटी, भगोती, कुलसारी, चेपड़ों, फल्दियागांव, मुंदोली, तथा वाण गांवों से होकर गैरोली पातल, पातर नचौणियां, शिला समुद्र के निर्जन पड़ावों को पार कर हिमालय स्थित होमकुण्ड तक जाती है। यहाँ पथ प्रदर्शक मेंढे को हिमालय की ओर छोड़ दिया जाता है। वापसी में चंदनिया घट, सुतोल, घाट होते हुए वापस नौटी पहुँचा जाता है।

नंदापाती/पातबीड़ा

नंदापाती या पातबीड़ा भी नंदाष्टमी पर नंदादेवी पूजन का ही लोक-अनुष्ठान है। इसका आयोजन रुद्रप्रयाग जनपद के क्वीली, कुरझण, पाली, सणगू आदि गाँवों में किया जाता है। इस अनुष्ठान में एक

विशाल चीड़-वृक्ष पर कुणजा घास को लपेट कर बाहर से मौसमी फल जैसे - नींबू, संतरा, अनार, अमरूद, अखरोट, अंगूर, सेब, नाशपाती, केले, खीरा, भुट्टा इत्यादि सजाये जाते हैं। पेड़ को देवी के चौक में गाड़ कर खड़ा किया जाता है। पेड़ के शीर्ष पर नंदादेवी की मूर्तिनुमा डोली सजायी जाती है। विभिन्न गाँवों से श्रद्धालु पूजा की थाली लेकर व लोकवाद्यों के साथ पहुँच कर इस पेड़ की परिक्रमा करते हैं। पेड़ के चारों ओर के मकानों की छतों और आँगन में श्रद्धालुओं की दर्शकदीर्घा बन जाती है। ढोल-दमाऊ, शंख तथा घंटे के समवेत स्वर गूँजने के साथ ही भूमि के भूम्याळ-मेलदेव अवतरित हो जाते हैं। इसके बाद हीत, कार्तिक स्वामी, उफराई देवी तथा अन्य देवियों का अवतरण होता है। तदन्तर दैवी-अवतरण दूबा जाति के पुरोहितों में से किसी एक पर होता है। वो उछलते हुए सीधे खड़े पेड़ पर चढ़ने लगता है। जय-जयकार का स्वर चारों ओर उच्चरित होने लगता है। अवतरित पुरुष पेड़ के शीर्ष पर पहुँच कर, डोली के अंदर रखी हुई देवी की मूर्ति, भेंट, फल, मेवे व प्रसाद को अपनी धोती से बनी खोता-गाती के अंदर रखता है। फिर प्रारम्भ होता है लहर, हास्य और छीना-झपटी वाला खेल। पेड़ से ही दूर-दूर तक फल फेंके जाते हैं और उसे पकड़ने के लिए उस दिशा की भीड़ में एक लहर-सी उत्पन्न होती है। लगभग दो घंटे तक ये फल-वितरण आयोजन चलता है। तदन्तर पुजारी नीचे उतरता है और श्रद्धालु अपने घरों को लौट जाते हैं। नंदापाती आयोजन हजारों धियाणों (ब्याहता बेटी, बहनें) के मिलन का भी अनोखा आयोजन बन जाता है।

पौड़ी जिले के राठ क्षेत्र में नंदापाती का आयोजन, भितरी और भैली पाती दो रूपों में किया जाता है।

बन्याथ

इस धार्मिक अनुष्ठान को दिवारा-बन्याथ के नाम से जाना जाता है, जो लोकोत्सव भी है। देवारा/दिवारा अर्थात् देवयात्रा। दिवारा में देवी/देवता को उसके प्रतीक-विग्रह रूप में उस क्षेत्र का, विधिविधान से क्षेत्र-भ्रमण करवाया जाता है। देवयात्रा सम्पन्न होने के बाद किया जाने वाला यज्ञ-अनुष्ठान बन्याथ कहलाता है। देवी के दिवारा-बन्याथ को शिव-सती के करुण पौराणिक प्रसंग से जोड़ कर देखा जाता है। लोकमानस शिव के अपमान और सती के आत्माहुति के प्रसंग के प्रति अपनी सहानुभूति और श्रद्धा का प्रदर्शन, इस अनुष्ठान के माध्यम से करता है। यह भी उल्लेखनीय है कि गढ़वाल में देवी कोई भी हो, उससे धियाण (दुहिता) का भाव भी रखा जाता है। यही कारण है कि यहाँ प्रत्येक देवी के मायके और ससुराल के गाँव भी अवश्य होते हैं। शिव-सती प्रसंग को भी लोकमानस धियाण के ससुराल में हुए उत्पीड़न के रूप में ग्रहण कर, अपनी पक्षधरता और अन्याय के प्रति विद्रोह का सांकेतिक प्रदर्शन दिवारा-बन्याथ के माध्यम से करता है।

विग्रह, डोली या ब्रह्मठांगरा के रूप में होता है। देवी/देवता का भ्रमण-क्षेत्र भी निर्धारित होता है। देवी/देवता के अधिकार क्षेत्र के गाँवों को बानी गाँव कहा जाता है। बन्याथ शब्द की व्युत्पति बानी से होना भी बतायी जाती है। वनयात्रा से भी इसे जोड़ा जाता है। बन्याथ में क्षेत्रभ्रमण, जलजात्रा, यज्ञ तथा

धियाण-भोज सम्मिलित होता है। देवी/देवता के प्रतीक-विग्रह के साथ, बानी गाँवों के अतिरिक्त तीर्थस्थलों और प्रयागों की भी यात्रा की जाती है। ब्रह्मठांगरा एक बाँस होता है जिसके उपरी सिरे पर बांस और लाल रेशमी कपड़े की छोटी डोली-सी बनाकर उसमें श्रीयंत्र व दिव्य औषधियाँ रखकर देवी/देवता की सकलीकरण, प्राण-प्रतिष्ठा की जाती है। श्रद्धालु ब्रह्मठांगरा पर अपनी मनौती के साड़े चढ़ाते हैं। फर्स, लकड़ी पर उकेरी गयी देवी की मुखाकृति होती है। ऐरवाळा शिव के सात गणों के रूप में बन्याथ में प्रतिभाग करते हैं। देवी/देवता के प्रतीक-विग्रह ब्रह्मठांगरा, फर्स, डोली आदि को इन्हीं के द्वारा ले जाया जाता है। इनकी वेशभूषा भी विशिष्ट होती है। पाण्डवनृत्य के पाण्डवों की तरह लम्बा सफेद घाघरा, चूड़ीदार पायजामा, कमरबंद, पगड़ी पहने हुए ये नाक-मुँह को भी एक कपड़े से ढक कर रखते हैं। इनके पाँवों में घुंघरू भी बंधे होते हैं। ऐरवाला को बन्याथ-अवधि में निर्धारित धार्मिक आचरण का पालन करना पड़ता है। प्रत्येक शाम को विश्रामस्थल वाले गाँव/कस्बे में ऐरवाळे नृत्य कर श्रद्धालुओं का मनोरंजन भी करते हैं।

बालद्यौ भी बन्याथ का अभिन्न अंग होता है। इसे विष्णु भगवान द्वारा अपने सुदर्शन चक्र से सती की मृतदेह को टुकड़ों में विभक्त करने के प्रतीक के रूप में देखा जाता है। बालद्यौ का प्रतीक धारित करने वाले ऐरवाळे को बालद्यौ ही कहा जाता है। समुद्र-मंथन, गरुड़ झाड़, कंस फाड़ा आदि अनुष्ठान भी बन्याथ में सम्पन्न किये जाते हैं।

1.7 बेडवार्त

बेडवार्त गढ़वाल का एक लोक अनुष्ठान है जिसमें लोकनाट्य के तत्व समाहित हैं। इसका प्रचलन बीसवीं सदी के पहले दशक तक रहा। अवर्षण, दुर्भिक्ष और महामारी के निवारणार्थ इसका आयोजन किया जाता था। बेडवार्त दो शब्दों से मिल कर बना है - बेडा और वार्त/बार्त। बेडा, बाजगी समुदाय से होते हैं, जिनमें नट-कौशलसम्पन्न को बेडावार्त आयोजन के लिए आमंत्रित किया जाता था। वार्त/बार्त बाबला घास की 3 इंच व्यास मोटाई वाली 400 गज लम्बी रस्सी होती है। आमंत्रित बेडा अनुष्ठान स्थल वाले गाँव में आयोजन तिथि से लगभग पंद्रह दिन पहले पहुँच जाता था। बेडा, हँसी-मजाक वाले कथोपकथन द्वारा इस अवधि में उपस्थित लोगों का मनोरंजन किया करता था। इसे बेड़ा का भंडयाणा कहा जाता है। बदले में उसे उदारतापूर्वक उपहार भी प्राप्त होते थे। बेडा उपहारदाताओं का धन्यवाद और जयकार उच्चरित करता हुआ अमुक व्यक्ति का 'खंड बाजे' कहता है। खण्ड बाजे का अभिप्राय है, ऐश्वर्य बढ़े, यश-कीर्ति फैले। इस अवसर पर बेड़ा द्वारा औसर गायन किया जाता है। औसर का अर्थ है आयोजकों के वंश-इतिहास का यशगान करना।

समाज के सभी वर्गों की बेडवार्त में सहभागिता हुआ करती थी। मुख्य आयोजन के दिन बेडा नहा-धोकर नए वस्त्र पहनता था। उपस्थित जनसमुदाय द्वारा उसे आभूषणों से सुसज्जित किया जाता था और सुंदर पगड़ी पहनायी जाती थी। उसके माथे पर गीले चावलों का छापा (ज्यूंदाळ-अक्षत) लगाया जाता था और गणेश-पूजन के पश्चात बेडा को प्रधान के कंधों पर, बाजे-गाजे के साथ मुख्य आयोजनस्थल तक ले जाया जाता था। वहाँ पर एक ऊँचे खूंटे पर बेडवार्त की रस्सी का एक सिरा मजबूती से बंधा रहता था। यहाँ से रस्सी पहाड़ी ढलान के अनुदिश लगभग 400 गज नीचे किसी खेत में बंधी रहती थी। रस्सी को तेल से खूब चिकना किया जाता था और उसके ऊपर लकड़ी की काठी (घोड़ी भी कहा जाता है) पर बेड़ा फिसलते हुए नीचे खेत में बंधी रस्सी के अंतिम सिरे तक पहुँचता था। इस सिरे पर कुछ ताकतवर लोग बेड़ा को थामने के लिए खड़े रहते थे। संतुलन के लिए बेड़ा के दोनों पाँवों पर मिट्टी के थैले भी लटकाये जाते थे। काठी पर बिठाने से पहले बेड़ा को खीर खिलायी जाती थी। काठी पर बैठते हुए बेड़ा भूम्याळ देवता को संबोधित करते हुए अकाल, महामारी दूर करने व अच्छी फसल देने की प्रार्थना करता है। नटकौशल-सम्पन्न बेड़ा अधिकतर सही-सलामत अंतिम सिरे पर पहुँच जाता था पर कभी-कभी काठी रस्सी में फंसने से बेड़ा गिर कर घायल हो जाता था या कभी उसकी दु:खद मृत्यु भी हो जाती थी। बेड़ा के सकुशल नीचे उतरने पर उसके माथे पर चिपके चावलों को प्रसादस्वरूप ग्रहण किया जाता था। कुछ लोग बेड़ा के सर के बालों को भी प्रसादस्वरूप ग्रहण करते थे। ब्रिटिश यात्री विलियम मूरक्राफ्ट ने फरवरी 1820 में टिहरी के प्रसिद्ध बेडवार्त विशेषज्ञ बंचू बेड़ा का साक्षात्कार भी लिया था।

बेडवार्त से सम्बंधित एक गढ़वाली लोकगीत इस तरह है :-

बेडा की बर्तुली बंटेगे, बेड़ा का तोरण घैंटेगे।
मैं बुबा थौळ जांदो, कौतग्यारा सब्बि पैट्या भंडारी, कंडारी, रौत।
ये पैट्या बागुड़ी बुटोला, ये पैट्या केमर्या राणा।
दे बुबा डबळी का गौणा, दे बुबा ढूंढीक कापड़ा।

अब उत्तराखण्ड में बेडवार्त का सूक्ष्म प्रतीकात्मक आयोजन कहीं-कहीं लांग उत्सव के रूप में किया जाता है। लांग, लगभग 30 फीट ऊँचा, नौ गाँठ वाला बांस होता है। इस पर चढ़ कर ही बेड़ा अपने नट-कौशल का प्रदर्शन करते हुए, रस्सी पर फिसलते हुए नीचे उतर जाता है।

1.8 रम्माण

रम्माण गढ़वाल का आनुष्ठानिक लोकनाट्य है। जोशीमठ, जनपद चमोली के सलूड़ और डुंग्रा गाँव में रम्माण का प्रमुख आयोजन होता है। इस लोकनाट्य को यूनेस्कों द्वारा 2 अक्टूबर 2009 को विश्व

धरोहर घोषित किया गया है। 2016 में गणतंत्र दिवस के अवसर पर उत्तराखण्ड की रम्माण झांकी को भी सम्मिलित किया गया था।

भूम्याल ग्राम देवता को समर्पित ये आयोजन बैसाख के महीने में होता है। प्रायः बैसाख की 9वीं, 11वीं या 13वीं तिथि को इसका मुहूर्त निकाला जाता है। इस अनुष्ठानिक लोकनाट्य का आयोजन दिन और रात दोनों समय चलता है।

रम्माण में रामायण के विभिन्न प्रसंगों को नृत्य करते हुए मंचित किया जाता है। दिन में राम, लक्ष्मण, सीता तथा हनुमान पारम्परिक श्रृंगार कर 18 ताल का नृत्य करते हैं। रामायण के जो प्रसंग रम्माण में प्रदर्शित किये जाते हैं, वे हैं - राम-लक्ष्मण जन्म, सीता स्वयंवर, वनवास, मृग-आखेट, सीता हरण, राम-हनुमान मिलन, लंका दहन तथा राम-राजतिलक। 18 तालों का विशेष महत्व होता है। ताल-गणना के लिए निर्धारित व्यक्ति मुख्य द्वार के ऊपर खड़िया से निशान भी लगाता रहता है।

रम्माण के दिन आयोजित होने वाले नृत्यों का विवरण निम्नवत है :-

1. 1 से 7 ताल : राम-लक्ष्मण जन्म, आरती व नृत्य।
2. 8वां ताल : अर्द्धगा नृत्य। सीता का पात्र, अर्द्धगा-वेश में नृत्य करता है। इसे अर्द्धनारेश्वर से भी जोड़ा जाता है।
3. 9वां ताल : सीता-स्वयंवर।
4. 10वें ताल के बाद : अ- म्वर-म्वरीण का मुखौटा नृत्य।
   ब- भूम्याळ (क्षेत्रपाल) देवता का नृत्य (गर्भगृह से बाहर आकर प्रांगण में)
5. 11वें ताल के बाद : बणिया-बण्यांण व ख्यलारी नृत्य।
6. 15वें ताल के बाद : अ-माळ नृत्य। गोरख्याणी (1803-1815) के प्रतीक इस नृत्य में दो या चार मल्ल (योद्धा) बंदूक, खुखरी तथा ढाल के साथ प्रतीकात्मक युद्ध करते हैं।
   ब- कुरुजोगी नृत्य। कूरो नामक घास को इस उत्सव से पूर्व एकत्रित कर लिया जाता है। इस घास पर चिपकने वाले कांटे होते हैं। इस घास के कंटीले फूलों को दर्शकों सहित मल्लों पर भी फेंक कर चिपकाया जाता है। इसे उत्सव के प्रसाद के रूप में ग्रहण किया जाता है। इस तरह घासोन्मूलन और प्रसाद-वितरण के दो काज एक ही पंथ से सम्पन्न हो जाते हैं।

7. 16वां ताल : स्वर्णमृग-आखेट।

8. 17वां ताल : राम का स्वर्णमृग-मुंड के साथ नृत्य। सीता-हरण व लंका-दहन का मंचन।

9. 18वां ताल : राम-राजतिलक।

10. फुलचेली नृत्य : इसमें राम-राज्याभिषेक की खुशी में फुलचेलियों (पुष्पाभिषेक करने वाली कन्याएँ) का अभिनय कर दर्शकों का तिलक किया जाता है।

11. नृसिंह-प्रह्लाद नृत्य : गोधूलि बेला पर नृसिंह अवतरित होते हैं और 20 किलो वजनी मुखौटे के साथ पाँच विभिन्न तालों में नृत्य करते हैं।

12. भूम्याळ(क्षेत्रपाल) नृत्यः आयोजन के अंत में भूम्याळ (क्षेत्रपाल) देवता, भगवती, नंदा, त्यूण देवता व विश्वकर्मा देवता अपने-अपने पश्वा पर अवतरित होते हैं।

रम्माण में रात्रि में निम्नांकित नृत्य आयोजित किये जाते हैं :-

1. मुखौटा नृत्य :
   - अ- सूरज-ईश्वर नृत्य
   - ब- गणेश-कालिंका नृत्य
   - स- गान्ना-गुन्नी नृत्य
   - द- म्वर-म्वरीण नृत्य
   - य- बणिया-बण्यांण व ख्यलारी नृत्य

2. बुढ़देवा तथा राणी-राधिका नृत्य : बुढ़देवा (नारद) चँवर हाथ में लेकर एकल-नृत्य करता है। विनोदपूर्ण संवादों से वह दर्शकों का भरपूर मनोरंजन करता है। तत्पश्चात बुढ़देवा, राजा कन्न, राजा गोपीचंद व राणी-राधिकाएँ बुढ़देवा के साथ नृत्य करती हैं। प्रथम व द्वितीय रात्रि को क्रमशः 7 व 9 राणी-राधिकाएँ रहती हैं।

3. पाण्डव नृत्य : इस लोकोत्सव की अंतिम रात्रि को पांडव नृत्य का आयोजन किया जाता है।

1.9 पौराणिक-ऐतिहासिक लोकनाट्य व स्वांग

पौराणिक-ऐतिहासिक लोकनाट्य

रामलीला लोकनाट्य की ही तरह पौराणिक व ऐतिहासिक नाटकों के मंचन की भी गढ़वाल में परम्परा है। इनका आयोजन अधिकतर जून या दशहरा-दीवाली के अवसर पर किया जाता है। एक से दस दिन तक अधिकतर इनका मंचन किया जाता है। पौराणिक नाटकों में कृष्णजन्म, हरिश्चंद्र, अर्जुन, जयद्रथ वध, वीर अभिमन्यु आदि प्रमुख हैं। इसी तरह ऐतिहासिक नाटकों में अमर सिंह राठौर, सुल्ताना डाकू। कुछ नाटक स्थानीय स्तर पर भी लिखे जाते थे या अनुकूलित किये जाते थे। रामी बौराणी, माधो सिंह भण्डारी, तीलू रौतेली जैसे आंचलिक-इतिहास से सम्बंधित व भस्मासुर जैसी पौराणिक नृत्यनाटिकाओं का मंचन भी इसी श्रेणी में आता है। इनके संवाद छंदबद्ध गढ़वाली-काव्य के रूप में होते हैं।

स्वांग

गढ़वाल में स्वांग की एक विशेष शैली मिलती है। ये रामलीला या पौराणिक-ऐतिहासिक नाटकों के बीच में मंचित किये जाते हैं। इनकी अवधि 15 से 20 मिनट की होती है। पात्रों का अभिनय विदूषकों की तरह होता है इसलिए इसे जोकरिंग के नाम से भी जाना जाता है। दर्शक मुख्य लीला या नाटक के बीच इनका बेसब्री से इंतज़ार करते हैं। इसलिए भी कि इनकी थीम-संवाद-अभिनय का पूर्वानुमान नहीं होता है। स्वांग के द्वारा अंधविश्वास व रूढ़ियों पर कटाक्ष कर लोगों को जागरूक किया जाता है। वेशभूषा और अभिनय से हास्य उत्पन्न किया जाता है। स्वांग एकल भी किया जाता है और अधिकतम चार तक भी पात्र हो सकते हैं। कुछ प्रसिद्ध स्वांग हैं - भूत भगाने का स्वांग, बेमेल विवाह, पैसे लेकर बेटी का विवाह तय करना, बाक्या से पूछ करवाना, पाखण्डी जोगी, शराबी के हाल, अशिक्षा का प्रभाव, तकनीकी चीजों के प्रयोग में असमर्थता, विकास की पोल, झूटी शान आदि।

स्वांग का ही एक प्रकार औसर भी है। बेडवार्त आदि लोक अनुष्ठानों के अवसर पर बेड़ा द्वारा ये किया जाता है। औसर में अभिनय के तत्व कम होते हैं। भौंडे, गंवारू और अश्लील शब्दावली के जरिए मनोरंजन करने का प्रयास किया जाता है। स्वांग का ये रूप अब लुप्तप्राय हो गया है।

2.0 सारांश

शास्त्रीय नाटकों और लोक नाटक में अंतर यह होता है कि नाटक में कथावस्तु, अभिनय करने वाले, रस तथा अभिनय प्रमुख होता है जबकि लोक नाटक में लोककथा/पौराणिक कथा, गीत, नृत्य, यथार्थ जीवन प्रसंग। लोकनाट्य के लिए किसी विशेष मंच की आवश्यकता भी नहीं होती है। लोकनाट्य की एक विशेषता यह भी होती है कि इसमें पात्रों के शृंगार-प्रसाधन की विशेष आवश्यकता नहीं होती है साथ ही लोकनाट्य की भाषा भी कृत्रिम न होकर लोकव्यवहार की भाषा होती है।

रामलीला की शुरुआत भारत में भक्तिकाल (15वीं-16वीं सदी) में हुई थी। तुलसीदास के रामचरितमानस के सृजन के बाद। लोकभाषा में रामायण आने से रामकथा लोक के अधिक समीप

पहुँची। उसी समय ये लोकनाट्य के रूप में गढ़वाल भी पहुँची। गढ़वाल में रामलीला के विधिवत मंचन की शुरुआत 1870 में श्रीनगर में हुई, मानी जाती है। गढ़वाली रामलीला में रामकथा का कथानक का बड़ा हिस्सा गेय पद्यात्मक होता है। नोटंकी के वहरत, राधेश्याम जैसे छंदों का खूब प्रयोग होता है। इनके अतिरिक्त दोहा, चौपाई तथा रागिनी छंद का भी प्रयोग होता है।

नृत्याभिनय के द्वारा प्रस्तुत पाण्डवलीला, पण्डवार्त तथा पाण्डवनृत्य के नाम से जानी जाती है। आयोजन-अंतराल गाँव की परिस्थिति पर निर्भर रहता है। कहीं प्रतिवर्ष, कहीं तीसरे वर्ष और कहीं अतिवृष्टि, अनावृष्टि व महामारी के परिहार के लिए। आयोजन सामान्यतः माघ मास में किया जाता है। आयोजन अवधि नौ दिन से लेकर एक माह तक होती है। इस लोकनाट्य में संवाद नहीं होते, अंगाभिनय मात्र होता है। पाण्डवलीला के अन्तर्गत चक्रव्यूह, कमलव्यूह व मकरव्यूह का आयोजन पूरी नाटकीयता के साथ किया जाता है। इन व्यूह नृत्यों ने अब स्वतंत्र लोकनाट्य के रूप में भी राष्ट्रीय स्तर पर ख्याति अर्जित कर ली है। चक्रव्यूह व कमलव्यूह में क्रमशः अभिमन्यु व जयद्रथ वध का मंचन किया जाता है।

परम्परा से गढ़वाल में शैव और शाक्त मतों की प्रधानता रही है। आदि शंकराचार्य द्वारा ज्योतिर्मठ की स्थापना के बाद वैष्णव मत भी स्थानीय लोगों के धर्म-विश्वास का अभिन्न अंग बन गया। पुराणों में जिस हिमवंत देश का वर्णन मिलता है वो गढ़वाल का ही पुराना नाम था जो आगे चलकर केदारखण्ड हो गया था। गढ़वाल में देवियों से सम्बंधित अनुष्ठान प्रत्येक बारह वर्ष के अंतराल में किये जाने की परम्परा है। भाद्रपद मास के शुक्लपक्ष की अष्टमी को नन्दाजात का मुख्य आयोजन सम्पन्न किया जाता है। इसे नन्दाष्टमी भी कहते हैं। लोकआस्था है कि कैलाशवासी शिव को पति के रूप में वरण करने वाली नन्दा (पार्वती) इसी क्षेत्र की पर्वतीय कन्या थी जो प्रतिवर्ष अपनी ससुराल, त्रिशूल पर्वत से श्रावण मास में कुछ दिनों के लिए, अपने बंधु-बांधवों से मिलने के लिए मायके चांदपुर आती है। नंदापाती या पातबीड़ा भी नंदाष्टमी पर नंदादेवी पूजन का ही लोक-अनुष्ठान है। इसका आयोजन रुद्रप्रयाग जनपद के क्वीली, कुरझण, पाली, सणगू आदि गाँवों में किया जाता है। दिवारा में देवी/देवता को उसके प्रतीक-विग्रह रूप में उस क्षेत्र का, विधिविधान से क्षेत्र-भ्रमण करवाया जाता है। देवयात्रा सम्पन्न होने के बाद किया जाने वाला यज्ञ-अनुष्ठान बन्याथ कहलाता है।

बेडवार्त गढ़वाल का एक लोक अनुष्ठान है जिसमें लोकनाट्य के तत्व समाहित हैं। इसका प्रचलन बीसवीं सदी के पहले दशक तक रहा। अवर्षण, दुर्भिक्ष और महामारी के निवारणार्थ इसका आयोजन किया जाता था। बेडावार्त दो शब्दों से मिल कर बना है - बेडा और वार्त/बार्त। बेडा, बाजगी समुदाय से होते हैं, जिनमें नट-कौशलसम्पन्न को बेडावार्त आयोजन के लिए आमंत्रित किया जाता था। वार्त/बार्त बाबला घास की 3 इंच व्यास मोटाई वाली 400 गज लम्बी रस्सी होती है। अब उत्तराखण्ड में बेडवार्त का सूक्ष्म प्रतीकात्मक आयोजन कहीं-कहीं लांग उत्सव के रूप में किया जाता है। लांग, लगभग 30 फीट ऊँचा नौ गाँठ वाला बांस होता है इस पर चढ़ कर ही बेड़ा अपने नट-कौशल का प्रदर्शन करते हुए रस्सी पर फिसलते हुए नीचे उतर जाता है।

रम्माण गढ़वाल का आनुष्ठानिक लोकनाट्य है। जोशीमठ, जनपद चमोली के सलूड़ और डुंग्रा गाँव में रम्माण का प्रमुख आयोजन होता है। रम्माण में रामायण के विभिन्न प्रसंगों को नृत्य करते हुए मंचित किया जाता है।

रामलीला लोकनाट्य की ही तरह पौराणिक व ऐतिहासिक नाटकों के मंचन की भी गढ़वाल में परम्परा है। इनका आयोजन अधिकतर जून या दशहरा-दीवाली के अवसर पर किया जाता है। गढ़वाल में स्वांग की एक विशेष शैली मिलती है। ये रामलीला या पौराणिक-ऐतिहासिक नाटकों के बीच में मंचित किये जाते हैं। स्वांग के द्वारा अंधविश्वास व रूढ़ियों पर कटाक्ष कर लोगों को जागरूक किया जाता है।

2.1 शब्दावली

करबच - ऊन का थैला जो भेड-बकरी की पीठ पर दोनों तरफ लटकाया जाता है,

कंडी - रिंगाल की बुनी हुई गहरी टोकरी , थौळ - मेला, कौतग्यारा - मेलार्थी,

डबळी - संदूकची, गहेणा - गहने, कार्तिक स्वामी - शिवपुत्र कार्तिकेय,

बौराणी - बहूरानी,

गोरख्याणी - गोरखों का गढ़वाल में उत्पीड़न भरा शासनकाल (1803-1815),

माधो सिंह भण्डारी - गढ़वाल नरेश का वीर सेनापति हूणों को पराजित करने व पहाड़ी से सुरंग खोदकर नहर बनाने के लिए विख्यात है,

तीलू रौतेली - गढ़वाल की लक्ष्मीबाई के नाम से प्रसिद्ध मध्यकालीन वीरांगना।

2.2 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

1. लोकनाट्य के लिए किसी .....की आवश्यकता भी नहीं होती है।
2. रामलीला की शुरुआत भारत में .....में हुई थी।
3. पाण्डवनृत्य का आयोजन करने वाले गाँवों में .....के निसाण (प्रतीकात्मक अस्त्र-शस्त्र) होते हैं।
4. भाद्रपद मास के शुक्लपक्ष की .....तिथि को नन्दाजात का मुख्य आयोजन सम्पन्न किया जाता है।
5. नंदापाती या पातबीड़ा भी नंदाष्टमी पर .....पूजन का ही लोक-अनुष्ठान है।

6. दिवारा में देवी/देवता को उसके प्रतीक-विग्रह रूप में उस क्षेत्र का, विधिविधान से ..... करवाया जाता है।
7. वार्त/बार्त बाबला घास की 3 इंच व्यास मोटाई वाली 400 गज लम्बी .....होती है।
8. जोशीमठ, जनपद चमोली के सलूड़-डुंग्रा गाँव में .....का प्रमुख आयोजन होता है।
9. स्वांग के द्वारा अंधविश्वास व रूढ़ियों पर .....कर लोगों को जागरूक किया जाता है।
10. पौराणिक व ऐतिहासिक नाटकों के संवाद छंदबद्ध गढ़वाली-काव्य के रूप में होते हैं। (सत्य/असत्य)
10. लांग, लगभग 100 फीट ऊँचा नौ गाँठ वाला बांस होता है। (सत्य/असत्य)

उत्तर- 1. विशेष मंच 2. भक्तिकाल 3. पाण्डवों 4. अष्टमी

5. नंदादेवी 6. क्षेत्र-भ्रमण 7. रस्सी 8. रम्माण 9. कटाक्ष

2.3 संदर्भ ग्रंथ सूची

1. **Himalayan Folklore : Rev. E.S. Oakley, Tars Dutt Gairola**
2. उत्तराखण्ड ज्ञानकोश : डॉ. डी.डी.शर्मा
3. गढ़वाली भाषा और उसका साहित्य : डॉ. हरिदत्त भट्ट 'शैलेश'
4. गढ़वाली लोककला और लोकसाहित्य : शांति चौधरी, डॉ. जगदीश गुप्त
5. प्राचीन, लोककल्याणकारी यज्ञ बेडवार्त : कै.शूरवीर सिंह पंवार
6. पातबीड़ा, नंदा पूजन का एक और रूप : डॉ. डी.आर. पुरोहित
7. विश्व धरोहर रम्माण : डॉ. कुशल भण्डारी

2.4 निबन्धात्मक प्रश्न

1. गढ़वाल के संदर्भ में रामलीला, रम्माण व पांडवकथा आधारित लोकनाट्यों का वर्णन कीजिए।
2. गढ़वाल के संदर्भ में देवी-अनुष्ठान लोकनाट्य, बेडवार्त व स्वांग आधारित लोकनाट्यों का वर्णन कीजिए।

इकाई-6

गढ़वाली लोकोक्तियाँ, मुहावरे एवं पहेलियाँ

(Garhwali Proverbs, Idioms and Riddles)

इकाई संरचना

1.1 प्रस्तावना

1.2 उद्देश्य

1.3 लोकोक्तियाँ

1.3.1 समान भाव वाली हिंदी एवं गढ़वाली लोकोक्तियाँ

1.3.2 गढ़वाली लोकोक्तियाँ

1.4 मुहावरे

1.4.1 समान भाव वाले हिंदी एवं गढ़वाली मुहावरे

1.4.2 गढ़वाली मुहावरे अर्थ सहित

1.5 पहेलियाँ

1.6 सारांश

1.7 शब्दावली

1.8 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

1.9 संदर्भ ग्रंथ सूची

2.0 निबंधात्मक प्रश्न

1.1 प्रस्तावना

लोकोक्ति का शाब्दिक अर्थ लोक की उक्ति है। किंतु लोक की हर उक्ति लोकोक्ति नहीं होती। लोक की वही उक्ति लोकोक्ति बनती है जिससे कोई सीख देने वाली कथा या आख्यान जुड़ा हो। लोकोक्ति के लिए गढ़वाली में औखाण/औखाणा तथा पखाण/पखाणा शब्द प्रयुक्त होते हैं। संस्कृत के आख्यान या उपाख्यान शब्दों से इनकी व्युत्पति मानी जा सकती है। लोकोक्तियों को पुरखों का अनुभवजन्य

सूत्रवाक्य भी कह सकते हैं। लोकोक्तियों में सार्वत्रिक सत्य भी मिलता है और लय-तुक का लालित्य भी। लॉर्ड रसेल ने लोकोक्ति के लिए कहा है कि **A Proverb is the wisdom of many and the wit of one.**

डॉ. वासुदेवशरण अग्रवाल के अनुसार लोकोक्तियों में गागर में सागर भरने की प्रवृत्ति काम करती है। इनसे जीवन का सत्य बड़ी खूबी से प्रकट होता है। वास्तव में लोकोक्तियाँ मानस के अनुभव और ज्ञान के चोखे और चुभते सूत्र हैं। लोकोक्तियों में जीवन के यथार्थ रूप का सत्य या सार, संक्षिप्तता व चटपटेपन से ओत-प्रोत रहता है।

गढ़वाली में एक लोकोक्ति है बुड्या को बोल्यूं अर औंलूं को स्वाद बाद मा पता चल्द। अर्थात् बुजुर्गों की बोली बात का महत्व और आँवलों का स्वाद बाद में पता चलता है। लोकोक्तियाँ, बुजुर्गों के अनुभव से उपजीं ऐसे रससिक्त सूत्रवाक्य हैं जिनका महत्व तत्काल पता चले या अन्तराल के बाद, पर जब चलता है तो कोई भी दाद दिए बिना नहीं रह सकता।

मुहावरों को, साधारण अर्थ छोड़कर किसी विशिष्ट अर्थ को प्रकट करने वाले वाक्यांश के रूप में परिभाषित किया जाता है। गढ़वाली लोक में कई हिंदी के मुहावरों के लौकिक संस्करण भी देखने को मिलते हैं। गोबर गणेश होना गढ़वाली में मोळो मादेव (गोबर के महादेव) हो जाता है। जहाँ रामकहानी हिंदी में आत्मवृतांत के लिए प्रयुक्त होता है वहीं गढ़वाली में रामैण लगौण, लम्बे वृतांत के अर्थ देने वाला मुहावरा बन जाता है।

पहेलियाँ में सांकेतिक प्रश्न किया जाता है। श्रोता को संकेतों को समझना पड़ता है। कारण कुछ भी हो पर जब वक्ता अपनी बात सीधे-सीधे रखने में असुविधा का अनुभव करता है तब वो पहेलियों के रूप में अपनी बात रखता है।

1.2 उद्देश्य

गढ़वाली पाठ्यक्रम की यह अध्ययन सामग्री ऐसे पाठकों के लिए बनाई जा रही है जिन्हें गढ़वाली सीखनी है तथा गढ़वाली भाषा के लोकसाहित्य से परिचित होना है। इस अध्ययन सामग्री में हिंदी आधार-भाषा है। इकाई के अध्ययन के बाद आप गढ़वाली लोकसाहित्य में -

- लोकोक्तियों को मूल स्वरूप में सूचीबद्ध कर सकेंगे।
- हिंदी में समान भाव की लोकोक्तियों से गढ़वाली लोकोक्तियों का मिलान कर सकेंगे।

- मुहावरों को मूल स्वरूप में सूचीबद्ध कर सकेंगे।
- हिंदी में समान भाव के मुहावरों से गढ़वाली लोकोक्तियों का मुहावरों का मिलान कर सकेंगे।
- पहेलियों को उद्धृत करने में सक्षम हो सकेंगे व उनका हिंदी अर्थ को सूचीबद्ध कर सकेंगे।

1.3 लोकोक्तियाँ

लोकोक्ति का अर्थ है लोक की उक्ति। लोक द्वारा स्वीकृत उक्ति समय के साथ बोलचाल में प्रयुक्त होकर लोकोक्ति बन जाती है। इसका प्रयोग किसी बात, घटना या प्रसंग का समर्थन करने के लिए किया जाता है। लोकोक्ति संपूर्ण वाक्य है और इसका प्रयोग स्वतंत्र रूप से किया जा सकता है। गढ़वाली में लोकोक्तियों को 'पखाणा' कहा जाता है। ये पखाणें लोक के अनुभव के आधार पर जीवन की किसी सच्चाई को प्रस्तुत करते हैं। गढ़वाली में इन पखाणों का अथाह भण्डार है जिनमें से कुछ इस प्रकार हैं:-

1.3.1 समान भाव वाली हिंदी व गढ़वाली लोकोक्तियाँ

अंधा क्या चाहे, दो आँखें- काणा त्वै क्य चैंद, द्वी आँखा साणा.

अति सर्वत्र वर्जयेत- अति जौ बल खत्ति.

अपना-अपना खाना, अपना-अपना कमाना- मामा भणजा घऽर जैक होला, सामळ थौली अपणि-अपणि खौला.

अपनी अक्ल और पराई दौलत सबको बड़ी मालूम होती है- अपणि अकल अर बिराणु धन ज्यादा समझैंद.

उसकी टांगें उसी के गले पड़ी- अपणै खुट्टा लगदा अपणि छात्ति पर.

अपनी टांग उघारिए, आपहिं मरिए लाज- अपणु घुंडु अप्वी नांगु.

अपने मुँह मियाँ-मिट्ठू - अपणा गिच्चै बौराण.

अब की अब के साथ, जब की जब के साथ- पैलि खयाल, तब बांध कुट्यरि.

अल्पाहारी सदा सुखी- कम खाण सुखी रौण.

आ बैल मुझे मार- अऽ खुंड मेरा मुंड.

आप मरे बिना स्वर्ग नहीं मिलता- बिना अफु मर्यां स्वर्ग नि दिखेंद.

आप हारे बच्चू बहू को मारे- बांज नि सकि, बुरांस नि सकि, स्यांरु पर मारि धपाक.

आसपास बरसे दिल्ली पड़ी तरसे- जख नाक तख सोनो नी, जख सोनो च तख नाक नी.

ईश्वर की माया कहीं धूप कहीं छाया- सैं का दस खेल.

ऊँट के मुँह में जीरा- भैंसाऽ मुख मा फ्यूंल्यो फूल.

एक तो करेला, ऊपर से नीम चढ़ा- पैलीऽ छै बल बूड गितार, अब्त नाति दऽ जर्मी.

ओखली में सिर दिया तो मूसल से क्या डरना- उरख्यळा मौण धरि त् चोट्यूं देखी क्य डन्न.

करेगा सो भरेगा- दीन्यूं पौण, बूत्यूं लौण.

कल किसने देखा- भोळ कैन देखी.

का वर्षा जब कृषि सुखानी- जब तौली बौगी, तब आयी अक्कल.

कुत्ते के भौंकने से हाथी नहीं डरते- कव्वा ककड़ांदि रौ, पीना पाकदी जौ.

कोयला होय न ऊजला, सौ मन साबुन लाय- घूसि-घुसि सोरा, रेचि-रेचि गोरा.

कौआ चला हंस की चाल, अपनी भी भूल गया- कितलान करि सरपै सऽर, ताणि-ताणि तखि मू मऽर.

खग जाने खग ही की भाषा- लाटे सार लाटे की ब्वे जाणदी.

चट मंगनी, पट ब्याह- चट मांगण, पट ब्यो.

छोटे मुँह बड़ी बात- दाँत्वां अग्वाड़ी जीब.

जल में रहकर मगर से बैर- निर्भाग्यों कु रस्वाळ दगड़ी बैर.

तू भी रानी, मैं भी रानी, कौन भरे कुएँ से पानी- तु बि राणी, मि बि राणी, कु कूटलो चीणा-दाणी.

तेरे मन कुछ और है दाता के कुछ और- गिच्ची बोळ्दी, कपाळि हैंसदी.

दमड़ी की बुढ़िया टका सिर मुंडाई- मेरा बळ्दन उथगा बायी नी, जथगा खायी.

दान की बछिया के दाँत नहीं गिने जाते- दानाऽ बछला दाँत नि गणेंदा.

दुधारू गाय की लात भी सहनी पड़ती है- दुधाळ गौड़ी लात-भताक.

दूध का जला छाछ भी फूँक-फूँक कर पीता है- जैकु बाबु रिक्खन खायी सु काळा मूंडा देखी डरद.

न नौ मन तेल होगा, न राधा नाचेगी- असौंगा न्यूता लाण.

नाच न जाने आँगन टेढ़ा- खै नि जाणे खसम कांगु नाच नि जाणे खौळु बांगु.

नाम बड़े और दर्शन छोटे- यतरो नौं, ततरो नौं, बाड्यू ढिंडु की मा खौं.

नेकी और पूछ-पूछ- पौणा पूछी पकोड़ी.

पर उपदेश कुशल बहुतेरे- अपणा नि देखण हाल, हैंका देण स्वाल.

मतलबी यार किसके, दम लगाया खिसके- पकोड़ी पाकी, सबुन चाखी, आग लगि सबुन तापी.

बहुते जोगी मठ उजाड़- पौदा बिराळो मा मूसा नि मरदा.

बासी कढ़ी को उबाल आया- बूड पुराणि ठुमका नया.

मर्ज बढ़ता गया ज्यों-ज्यों दवा की- बेद्यऽ काटि, हाथ्यऽ बाडि.

मुँह में राम, बगल में छुरी- मुखड़ी हँसिली, पुछड़ी डंसिली.

शेरों के शेर ही होते हैं- बड़ा गोरूऽ बड़ो बछलो.

साँप के मुँह में छछूंदर, निगले तो अंधा, उगले तो कोढ़ी- तातो दूध, घूटण त् गिच्चो फुकेंद, थूकण त् खत्त होंदी.

सिंह के वंश में उपजा सियार- गरुड्वा घेंदुड़ा.

होनहार बिरवान के, होत चीकने पात- हुणत्याळी डाळी का चलचला पात.

1.3.2 गढ़वाली लोकोक्तियाँ अर्थ सहित

अऽ खुंड मेरा मुंड- स्वयं परेशानी मोल लेना. आ बैल मुझे मार.

अगवाळा पड़ी सोनो भारु- उपयोगी वस्तु का असंभव स्थिति में होना.

अगाणा निछोड़ून सामळ बीदा नि छोड्न कामळ- उपयोगी चीज़ सदैव साथ रखनी चाहिए.

अडगद कुकूर हाडगु पौ- परिश्रम से ही सफलता प्राप्त होती है.

अडगि-अडगि तैं फाळि, करम पर द्वी नाळी- अत्यधिक प्रयास करने पर भी भाग्य के अनुसार ही प्राप्त होता है.

अडगि-अडगि हिटि त चढ़ी रांड, माठु-माठु हिटि त सड़ीं रांड- चाहे जैसे भी काम करें अपयश ही प्राप्त होना.

अड़ायीं अकल अर थौल्यो सामळ पूरु नि होंद- दूसरे की सिखायी हुई अक्ल अधिक दिन काम नहीं आती तथा थैली का पाथेय अधिक दिन नहीं चलता.

अड़ै-अड़ै फुंडु, पळ्यै-पळ्यै खोंडु- अधिक समझाने पर बच्चे बिगड़ जाते हैं तथा अधिक धार देने पर हथियार की धार कुन्द हो जाती है.

अत्ति जौ खत्ति- किसी भी चीज़ की अति अच्छी नहीं होती।

अंध्यरि अर ब्यंदारि- अनिश्चित भविष्य.

अपणा नि देखणा हाल दुसरा देण स्वाल- पर उपदेश कुशल बहुतेरे.

अपणा नौं कि संगरांद बजौणी- अपने हिस्से का काम निबटा देना.

अपणा बारा गारा पीसणा- अपने समक्ष उपस्थित चुनौतियों का सामना करना.

अपणि अक्कल अर बिराणो धन जादा समझैंद- अपनी बुद्धि और दूसरे का धन अधिक प्रतीत होता है.

अपणु चकोर क्वै जनि भकोर- अपनी वस्तु का उपयोग कोई जैसा चाहे वैसा करे.

अपणैं खुट्टा लगदा अपणि छात्ति पर- अपने ही कर्मों का फल भोगना पड़ता है.

अप्वी औतारु अप्वी पुजारु- अपने आप ही सर्वेसर्वा बनना.

अलसि तैं दै कु साग- आलसी व्यक्ति आलस्य के कारण श्रम से बचने का प्रयास करता है.

अलसि रड्यां, डेरा पड्यां- आलसी व्यक्ति का परिश्रम से बचना.

अलसि रांडौ कुकूर मोटु- आलसी औरत का कुत्ता मोटा होता है.

आज गीजि काखड़ी, भोळ गीजि बाखरी- छोटे अपराध से बडे की लत लगती है.

आप घोड़ा न बाप घोड़ा- अपनी सामर्थ्य से बाहर होना.

आफ्फु सड्यूँ हैका मा चढ्यूँ- अपनी कमजोरी पर ध्यान न देकर दूसरे को उपदेश देना.

आरु बेडु आफु खौ, बैद भगार हैंका लगौ- गलती खुद करे तथा दोष दूसरे को दे.

उकाळ काटी सरपट- काम निकल जाने पर पिछली बातें भूल जाना।

उगटदा किरमल्वा लगदा पंख्यूड़- बहुत बढ़-चढ़कर बोलना विनाश का प्रतीक है.

उंड फुंडा चुल्ला फुंड, चुल्ला फुंडा उंड फुंड- बाहरी व्यक्ति को अपनाना, अपनों को ठुकराना.

उनैं बोलाण, चपैक खाण- सोच-समझ कर बोलना और चबा-चबा कर खाना चाहिए.

पैलि खयाल, तब बांध कुट्यरि- पहले जो सम्मुख है उससे निपट लो फिर कल की चिन्ता कर लेना.

एक घेत्या मरि जौ, सौ घेत्या बचि जौ- एक ही बार करने वाला मरे, बार-बार करने वाला जी जाए।

औंदा कु आदर, जांदा कु सत्कार- आगमन पर आदर, गमन पर सत्कार.

औता तैं धन प्यारु- नि:सन्तान को धन से बड़ा प्रेम होता है.

औताळ्या सी गोरु- आवारा पशु (तैका क्या छन औताळ्या सी गोरु छोड्यां).

औंदि दऽ बामण, जांदि दऽ भाट- आते समय सत्कार तथा जाते समय तिरस्कार करना.

कख गिड़कि कख बरखि- एक बात या घटना का असर दूर दूसरी जगह होना .

कख नारु, कख पाण्यौं धारु- असंगत कार्य का होना.

कब मरि बूड, कब आयां आंसु- घटना घटने के कई बाद पश्चाताप करना.

कब्बि बूड गड़गड़ि, कब्बि बुड्या गड़गडु- कभी एक नाराज़ तो कभी दूसरा नाराज़.

कर्यूँ कमायूँ भांगा बाड़ा- सारी मेहनत का व्यर्थ हो जाना.

कवा ककड़ांदि रौ, पीना पाकदि जौ- कर्मवीर काम करता रहता है तमाशबीन बड़बड़ाता रहता है.

काका बडुन गौं च भर्यूँ, उठ बैठ क्वै नी बोनूँ- बहुत रिश्तेदार होने पर भी उनके द्वारा अपनत्व न दिखाना.

काणा त्वै क्या चैंद, द्वी आंखा साणा- मनचाही वस्तु प्राप्त करना.

कीला जोर पर बुरकद बाछरु- मज़बूत सहारे के आधार पर काम करना.

कुकरा बाबुन दऽ तातु खायो- कुत्ता कभी गरम नहीं खा सकता.

कुखड्ड नि बासलु त रात नि ब्यांणि- एक ही चीज़ पर आश्रित न होना.

कुजगा दुखणु, जैठाणु वैद- गुप्तांग का फोड़ा और जेठ वैद्य.

कुंडळी क्या देखणि, मुंडळी देखली- सूरत से ही हाल-चाल जान लेना.

कुत्ता क्या देखण, कुत्तौ ग्वस्यूँ देखण- सेवक के अप्रिय व्यवहार की अपेक्षा उसके स्वामी के गुणों को देखना.

केदारन कमायो मदयोन् समायो- कमाये कोई और खर्च कोई और करे.

कैका तीन मा न तेरा मा- तीन में न तेरह में.

क्या करलि गंगसारि राणी, जैंका छोरा बुद्धि न बाणी- बुद्धिहीन संतान के होने पर माता रानी होते हुए भी कुछ नहीं कर सकती.

खऽणी अर गऽणी क्या नि निकल्द- खोदने और 'बाक्या' से पूछने पर कुछ न कुछ निकलता ही है.

खऽति ना बल उठौणू छूँ- चेतावनी देने से पहले ही काम बिगाड़ देना.

खांदा तैं हौर द्या, नि खांदा तैं क्य द्या- जो खाये उसे और दो जो न खाये उसे क्या दो

खाणौ तैं घ्वोड़ा, काम तैं ल्वोड़ा- अधिक खाना और काम न करना.

खायि न पायि, मन्नौं तैं आयि- प्रोत्साहन कुछ न देना केवल डाँट-डपट करना.

खै नि जाणु खसम कांगु, नाच नि जाणु खौळु बांगु- नाच न जाने आँगन टेढ़ा.

गैंणा तारा देखण- अत्यधिक परिश्रम करना.

गरीब गत्ता फाटीं लत्ता- गरीबी का प्रदर्शन.

गरुड़्वा घेन्दुड़ा- श्रेष्ठ माता-पिता की नालायक संतान.

गर्ज बन्दि खौ ट्वट्टा- अत्यधिक आवश्यकता के कारण हानि उठाना.

गास देण पर, बास नि देण- अपरिचित को खाना दे दो पर रात्रि में निवास के लिए स्थान नहीं देना चाहिए.

गिच्ची बोळदी, कपाळि हैंसदी- मन चाहे होत ना प्रभु चाहे तत्काल

गोणि मारी नोर न चाम- ऐसा काम करना जिसमें कोई लाभ न हो.

घौर ख्वै घर कूड़ि, बौण ख्वै पितर कूड़ि- जहँ-जहँ पाँव पड़े संतन के, तहँ-तहँ बंटाधार.

घुंडु-घुंडु फुक्की पर किड़ाण नि आयी- काफी नुकसान होने पर भी न संभलना.

घुसि घुसि सोरा, रेचि रेचि गोरा- पास आकर रिश्तेदार नहीं बना जाता और रगड़-रगड़ कर गोरा नहीं हुआ जाता.

घूटण त गौळु फुक्यंद, थूकण त खत्त होंदि- दुविधाजनक स्थिति होना.

घ्यू का घड़ा उन्द बी डाळा रूखो रूखु- बहुत उपकार करने पर भी कृतज्ञता न जताना.

घ्यू घड़ा फूट्या, कव्वों को राज पड़्या- नुकसान पर दूसरों के द्वारा फायदा उठाना.

घोड़े लात घोड़्वे सारि सकद- घोड़े की लात घोड़ा ही सहन कर सकता है. बलवान का प्रहार बलवान ही सह सकता है.

चोरो मन चंडाळ- चोर की दाढ़ी में तिनका.

जनि मयेड़ी, तनि जयेड़ि- जैसी माता वैसी संतान.

जब बिगड़ी काम, तब आयि बैसाखु बाबा को नाम- काम बिगड़ने पर अक्ल आना.

जख मैर नी तख रात नि ब्यांदी- किसी के न होने से काम नहीं अटकता.

जांदु ल्यांदु होंदे मौ- बुरे का साथ करने पर अच्छे लोग भी नष्ट हो जाते हैं.

जागदि बगता भला-भला स्वीणा, निमड़दि बगता भला-भला पौणा- असमय पर होने वाला अच्छा काम.

जागि जग्वाळी सैरी रात, घाघरू फुकि बाईस हाथ- लापरवाही पूर्वक निगरानी करना.

जालु आंग्यों फांग्यों, औलु ग्यदै पर- जहाज का पंछी जहाज पर ही लौटता है.

जादा खाणौ जोगि ह्वे, पैला बासा भूकु रै- अधिक लाभ के लालच में पहली ही पड़ाव पर भूखा रहना

जाण्दो नी बिछ्यौ मन्तर, सर्पु दूळि हाथ कुच्यौण- आधारभूत जानकारी तो है नहीं और जटिल काम करने को उद्यत होना.

जु नि ध्वो अपणु मुख, सु क्या करु हैंकौ सुख- जो अपना भला नहीं कर सकता वह दूसरे का भला क्या करेगा.

जुवौं का डैरन घाघरु नि छोड़ेंद- जूँ के डर से वस्त्र नहीं फेंका जाता.

जैकु बुबा रिक्खन खायी, सु काला मूंडा देखी डरद- जिसके पुरखे को रीछ ने खाया हो वह काली वस्तु से भी डरने लगता है.

जै कि छै डऽर, सु नी घऽर, जु चा सु कऽर- जिसके डर से अनुशासन में रहते थे उसके न होने पर मनमानी करना.

जैकु चुल्लु उसल्लु, तैकु कुल्लू उसल्लु- जो घर में आलस्य नहीं करता वह काम पर भी आलस्य नहीं करता.

जैन नि मानि ब्वे बुवे अर्ति, तेकु ज्यूंरा बाबु- माता-पिता की अवहेलना मृत्युतुल्य होती है.

जौंन परसाद बांटी नि जाणी, सि तिमल्वा बंट्वार बण्यां- अयोग्य व्यक्ति को कार्य सौंपना.

जोगी तैं जगा दीनि, मतकौण आयि- बेसहारे को सहारा देने के बाद उसका धौंस दिखाना या कृतघ्न बनना.

जोगी भाजि हगणै बिटि- सीमित सामान वाला कभी भी स्थान छोड़ सकता है.

झूट लाण गाड पार, जु नीभि जौ दिन चार- जहाँ लोग किसी बात को जानते हों वहाँ उसके संबंध में असत्य भाषण नहीं करना चाहिए.

ढुंगा मा पाणी पड़ि, रूझि न भीजि- पाषाण हृदय व्यक्ति के लिए कोमलता प्रभावहीन होती है.

तन्नि तान, तन्नि तून, तन्नि ढेबरी, तन्नि ऊन- सारी व्यवस्था में गड़बड़ी होना.

ताळ्वी सीं डऽर- अत्यधिक भय.

तैलु ख्वो अपणि मौ, सीलु ख्वो बिराणि मौ- बहुत तेज़ आदमी अपना ही नुकसान करता है.

दाणि-दाणि करी रास, बुंद बुंद करी हांस- जरा-जरा करके ही संग्रह किया जाता है.

दीन्यूं पौण बुत्यूँ लौंण- कर्म के अनुसार ही फल प्राप्त होता है.

दुधाळ गोरु की लात भताक- दुधारू गाय की लात भी सहनी पड़ती है.

न ल्वऽता भैर, न ल्वऽता भितर- असमंजस की स्थिति.

नांगाऽ नांगा दिखेण्या, तिमलाऽ तिमला खतेण्या- आँचल में संभाला भी गिरा और नंगे दिखे सो अलग.

ना लग माच्छा गड्याळै बाणी, भतक-भुतक त्वीन बि खाणि- दूसरे का अनुकरण करने पर हानि उठानी पड़ती है.

निजांदु बिराणि पन्येळि, निल्योंदु पुछड़ि गंडेळी- दूसरे के यहाँ नहीं जाता तो नुकसान नहीं उठाना पड़ता. अनधिकार चेष्टा नहीं करनी चाहिए.

पड़े नी त अकरु कींकु- भुगतान करना नहीं पड़ा तो महंगा कैसा. दूसरे के धन पर ऐश करना.

पैलि खयाल तब लगो फंचि- पहले खा लो फिर पोटली में रखना.

पैलि त कोढ़ि कांध नि धन्न, धन्न त झमकै तैं धन्न- जब किसी की मदद करनी हो तो पूरे मन से करनी चाहिए.

पेड़ा पड़ि फूट, गौं पड़ि लूट- घर के झगड़े से बाहरी व्यक्तियों को लाभ होता है.

बड़ा दुखै, बड़ि हैंसि- अत्यधिक दु:ख में रोना भी नहीं आता.

बांगि लाखड़ि कांध नि लाणि, ढगड्यांदि ढुंगि खुट्टु नि धन्न- टेढ़ी लकड़ी को कंधे पर नहीं रखना चाहिए तथा हिलते हुए पत्थर में पैर नहीं रखना चाहिए. समझदारी से काम करना.

बांज नि सकि, बुरांस नि सकि, स्यांरा पर मारि धपाक- बलवानों से न जीतने पर निर्बल पर प्रहार करना.

बिना आफु मर्यां स्वर्ग नि दिखेन्द- सुख प्राप्ति के लिए कष्ट उठाना पड़ता है.

बिराणा घऽर तातै रौड़, थऽरा गंगा ऐंच पौड़- दूसरे के घर मन इच्छित वस्तु की कामना नहीं करनी चाहिए.

बिराणि बातु ढुंगा मंगा सात्तु- दूसरे की बातों पर चलने से काम नहीं बनता.

बिराणौं लायि लंग फंग, खोस्यां खास्यां सी ढंग- दूसरे की वस्तुओं से की गई शरीर की सजावट स्थायी नहीं होती.

बीदा द्यो कु बज्जूर- अनहोनी बात होना.

बुगलै बन्दूक, खिन्नै तलवार- बनावटी बहादुरी. दिखावा करना.

बुरा देखी कर्ता डरु- बुरे से सभी डरते हैं.

बूड पुराणी, ठुमका नया- बूढ़ों का नजाकत दिखाना. बूढ़ी औरत का जवान की तरह सजना.

बेद्यौ काटि, हाथ्यौ बाडि- मर्ज़ बढ़ता गया ज्यों-ज्यों दवा की.

बोल बेटि, सुणौ ब्वारी- एक को कहना दूसरे को सुनाना.

ब्वे कि दूधि पीन्या मा नि ह्वै त, बाबै घुंतु पीक क्या होणि - पर्याप्त वस्तु से पेट नहीं भरा तो अपर्याप्त से क्या लाभ, थाली भर खाने से पेट नहीं भरा तो थाली चाटने से क्या होगा.

ब्वे खाणी, नौना रोणा- माँ का ममताहीन होना.

भैंसा मुख मा फ्यूंल्या फूल- अपर्याप्त खाद्य. ऊँट के मुँह में जीरा.

भैंसो डौ मकड़ा पर- किसी का क्रोध किसी और पर निकालना.

भौंण न भास, जिकुड़ि उदास- बेसुरा राग गाना.

मन घोड़ा मा, करम ल्वोड़ा मा- बुरे कर्म के बावजूद अच्छा पाने की कामना.

मर्याँ सर्पा आंखा घुच्यौण- निर्बल को सताना.

माच्छा माच्छा सब्बि बोदा, गाडा हाल क्वै नि देखदु- अच्छा फल सभी चाहते हैं पर प्राप्ति की कठिनाई कोई नहीं देखता.

मिट्ठो जऽडु खोदी खाण, कड़ो टुख्यनु बी नि तोड़ून- अच्छी वस्तु की चाहत. अच्छी वस्तु को संपूर्ण पाने की इच्छा तथा बुरी वस्तु को हाथ भी न लगाना.

मुंड नि छौ मुडारु, पेट नि छै पिड़ा- भले चंगे थे, जानबूझ कर आफत मोल ले ली.

मुखड़ि हंसिली, पुछड़ि डंसिली- मुँह में राम बगल में छुरी.

मूंड्यूँ देस जौ, अदमुंडु कख जौ- ज्ञानवान तो परदेश में भी खा सकता है पर अनाड़ी तो वहाँ के काम का भी नहीं।

मूसाऽ जाणा पराण, बिराळा ह्वयीं ख्यालि- निर्बल की जान पर बनी है और बलवान को खेल सूझ रहा है.

मेंढा लूण दीनि, उरख्यळा उन्द- ऐसी मदद करना जो किसी काम की न हो.

मेरि गंगा होलि, मैं मू आली - अपने हक की वस्तु अवश्य प्राप्त होगी.

मिन बोले मोरि तौलि ल्यौलु छलेक, नौ पलि हौर ले बड़ैक- जिससे आशा की उसका निराश करना.

मैर्यु मरड़ा बोली, सात्तु खैन पाणि मा छोळी- अधिक की इच्छा से कहीं जाना पर कम की प्राप्ति होना.

मि लगौणू आगरै, तु लगौणू घाघरै- प्रसंग से हटकर बात करना.

मोटा देखी डन्न नी, बरीक देखी भिड़ूण नी- सेहत देखकर ताकत का पता नहीं चलता अर्थात् मोटापा देखकर डरना नहीं चाहिए, पतले को देखकर उससे भिड़ना नहीं चाहिए.

मोर मोड़ी हैंकि तरफां ल्हिजौला, सुभौ मोड़ी कख ल्हिजौला- दरवाजे को मकान में कहीं भी ले जाओ पर स्वभाव को कौन बदल सकता है.

यार का घऽर पकोड़ि पाकि, सबुन चाखि, आग लगि सबुन तापि- मतलबी दोस्त केवल सुख के साथी होते हैं.

रगड़ि-रगड़ि गोरा, घुसि घुसि सोरा नि होंदा - जबरदस्ती संबंध स्थापित नहीं होते.

राखा मा चोट मारी, अपणै मुख उन्द आयी- निम्न प्रवृत्ति के लोगों से उलझने पर अपना ही

अपमान होता है.

रूखा म्वारे रूखि डांक- कठोर हृदय वाले व्यक्ति की वाणी भी कठोर होती है.

लगौ ल्वार बीच बाटा मा अणसाळु- बिना पूर्वसूचना या तैयारी के काम करने को कहना, स्वार्थ में अंधा बनना.

लाजदार लाजनै मरदु, बेसरम ढुंगुन बी नि मरदु- इज्जतदार की इज्जत जाना मृत्यु के समान.

लाजदारु तैं लाज, बेसरम तैं ख्यालि- इज्जतदार को इज्जत प्रिय होती है.

लाटै सार लाटै की ब्वे जाणदी- गूँगे के संकेत उसकी माँ ही जानती है.

लूला लांगुन लगै ह्वलि, सैरा साकि ज्ची जैन ड्वलि- अज्ञानियों के कार्य से औरों को भी नुकसान होता है.

ल्वख्यण पर लगै आंगि, स्या हिटि ड्यूडि बांगि- औरत को नया वस्त्र पहनाया तो वह इतराने लगी. अयोग्य का कुछ पाकर ज़मीन छोड़ देना.

वबराऽ अड़ायाँ बौंडा स्यट्ट- किसी को शिक्षा दी, दूसरा उससे पूर्व ही सतर्क हो गया.

सच्चु बीज होलु, तु ढुंगा मा जामलु- सच हमेशा सच ही होता है.

सनकौणू क्या च मनै मा च- संकेत क्यों देता है, सब पता है.

सर्पा घेरा बागा फेरा- रहस्यमयी व्यक्ति. साँप और शेर की गति का किसी को पता नहीं चलता.

सात समुद्रो फेण ल्यौण- बहुत दूर से सामान लाना. कठिन कार्य.

सूखा दगड़ि काचु बी फुकेन्द- दैवीय प्रकोप में सब भले-बुरे चपेट में आते हैं.

सैरु स्याळ खायि, पुछड़ै दगौ घीण- किसी भी कार्य के अंत में आनाकानी करना.

सौकार नि जोड़ून कांगु, आबत नि जोड़न नांगु- महाजन कंजूस और रिश्ता निर्धन से नहीं करना चाहिए.

1.4 मुहावरे

साधारण अर्थ को छोड़कर किसी विशिष्ट अर्थ को प्रकट करने वाला वाक्यांश मुहावरा कहलाता है. मुहावरों के प्रयोग से भावों और विचारों को प्रभावपूर्ण एवं सशक्त ढंग से अभिव्यक्त किया जाता है. मुहावरे लोकभाषा में घुल-मिलकर उसे सजीवता प्रदान करते हैं तथा उसकी सम्प्रेषणीयता में वृद्धि करते हैं. मुहावरों का स्वतंत्र रूप से प्रयोग नहीं किया जा सकता. इनका रूप भी नहीं बदलता. मुहावरों का वाक्य में प्रयोग होने से लिंग, वचन, कारक के अनुसार उनकी क्रिया बदल जाती है।

1.4.1 समान भाव वाले हिंदी व गढ़वाली मुहावरे

आँख का काँटा	-	आँख्यो खौड़.
आँख खुलना	-	आँखा खुलण.
आँख भौंह चढ़ाना	-	आँखा कपाळ चढ़ौण.
आँख लगना	-	आँखि लगण.
आँखें दिखाना	-	आँखा दिखौण.
आँखें फाड़-फाड़ कर देखना	-	आँखा फाड़ि देखण.
आग बबूला होना	-	खौंबाग बणण.
आग लगाना	-	आग लगौण.
आबदाना उठना	-	अन्न जल उठण.
आसमान पर थूकना	-	सर्ग पर थूकण.
आस्तीन चढ़ाना	-	बौंळा बिट्यौण.
उंगलियों पर नचाना	-	अंगुळ्यों पर नचौण.
उलटी पट्टी पढ़ाना	-	उल्टी पट्टी पढ़ौण.
एक-एक नस पहचानना	-	नस-नस पछण्ण.
ओखली में सर देना	-	उरख्यळा उंद मुंड धन्न.
कमर कसना	-	कमर कसण.
कमर टेढ़ी होना	-	कमर बांगि होण.
कलेजा काँपना	-	कळेजो काँपण.
कलेजा छलनी होना	-	कळेजा पर चीरा लगण.
कहीं का न रहना	-	कख्यो नि रौण.
काँटा निकालना	-	काँडो निकाळण.
काँटा-सा खटकना	-	काँडो जन बिनाण.
कान उमेठना	-	कंदूड़ ऐंठण.
कान खड़े होना	-	कंदूड़ खड़ा होण.
कान पकड़ना	-	कंदूड़ पकड़ण.
कान भरना	-	कंदूड़ भन्न.
कानून छाँटना	-	कानून छाँटण.
काम निकालना	-	काम निकाळण.
किस्मत खुलना	-	भाग खुलण.
कुआँ खोदना	-	कुवाँ खोदण.
कुत्ते की मौत मरना	-	कुकूरै मौत मन्न.
कोख उजड़ना	-	कुखि उजड्ण.
कौड़ियों के मोल	-	कौड्यों का भौ.
खाने दौड़ना	-	काटण जाण.

खिचड़ी पकाना – खिचड़ि पकौण.
खून का घूँट – ल्वे का घूँट.
खेल खेलना – खेल खेलण.
गंगा नहाना – गंगा न्हैण.
गढ़ जीतना – गढ़ जीतण.
गम खाना – गस खाण.
गला काटना – गौळू काटण.
गले पड़ना – गौळा पड्ण.
गले लगाना – गौळा लगौण.
गाँठ का पूरा – गाँठ्यू पक्को.
गाँठ पड़ना – गेड़ पड्ण.
गुस्सा थूकना – गुस्सा थूकण.
गुस्सा पीना – गुस्सा पीण.
घर उजड़ना – घऽर उजड्न.
घर का उजाला – कुलो उजाळो.
घर बसना – घऽर बसण.
घाव भर जाना – घौ भरेण.
घी के दीये जलाना – घ्यू का द्यू जलौण.
घुटने टेकना – घुण्डा टेकण.
चकमा देना – चकमा देण.
चक्कर मारना – चक्कर काटण.
चक्की पीसना – चक्की पीसण.
चस्का लगना – चस्का लगण.
चारा फेंकना – गाळो डाळण.
चाल चलना – चाल चलण.
चुप्पी साधना – चुप्पि साधण.
चूना लगाना – चूनो लगौण.
चोला छोड़ना – चोळा छोड्ण.
चोला बदलना – चोळा बदळ्ण.
छाती तान कर चलना – छत्ति ताणी चलण.
छाती पीटना – छत्ति पीटण.
जड़ खोदना – जड़ खोदण.
जी का जंजाल होना – ज्यू कु जंजाळ होण.
जूते पड़ना – जुत्ता पड्ण.
जूते खाना – जुत्ता खाण.
टाँग अड़ाना – टाँग अड़ौण.

टाँग खींचना - टाँग खींचण.
ठोकरें खाना - ठोकर खाण.
डोरे डालना - डोरा डाळ्ण.
तारे गिनना - गैणा गण्ण.
तूफान मचाना - तूफान मचौण.
तेल निकालना - तेल निकळ्ण.
थूक कर चाटना - थूकी तैं चाटण.
दाँत दिखाना - दाँत दिखौण.
दाँत पीसना - दाँत पीसण.
दाल न गलना - दाळ नि गळण.
दाहिना हाथ - दैणो हाथ.
दिन काटना - दिन पूरा कन्न.
दिल थामना - जिकुड़ि थामण.
दीप बुझना - द्यू मंझण.
दुकान लगाना - दुकान लगौण.
दुम हिलाना - पुछड़ि हिलौण.
दूध के दाँत न टूटना - दूध्या दाँत नि टूटण.
दूर भागना - दूर भाजण.
धाक जमाना - धाक जमौण.
धूनी रमाना - धुनि रमौण.
धूल में मिलना - माटा मा मिलण.
धौंस जमाना - धौंस जमौण.
ध्यान बंटना - ध्यान बंटण.
नजर आना - नजर औण.
नजर दौड़ाना - नजर दौड़ौण.
नजर लगना - नजर लगण.
नमक-मिर्च लगाना - लूण-मर्च लाण.

1.4.2 गढ़वाली मुहावरे अर्थ सहित

अकल कु दुश्मन - बेवकूफ.
कट्यां पर लूण-मर्च लाण- दुखी व्यक्ति को और दुखी करना.
गंगा नह्यण - बड़ा कार्य पूरा करना.
जंत-जोड़ कन्न - प्रबंध/व्यवस्था करना.
नाक कटण - अपमानित होना.

नाक रगड्ण	- खुशामद करना.
गिच्चा उंद पाणि औण	- ललचाना.
माटा भौ	- बहुत सस्ता.
हाथ बटौण	- मदद करना.
हाथ पसान्न	- माँगना.
हुक्का-पाणि बंद कन्न	- व्यवहार बंद करना.
भाग उंद बूसु पड्ण	- नासमझी करना.
गऽळा बैठण	- असमर्थ होना.
गिच्चु खतण	- अपशब्द कहना.
गिड़ै पड्न	- मनमुटाव होना.
गिड़ै बांधण	- याद रखना.
चट्ट कन्न	- नष्ट करना.
छील डाळ्ण	- झगड़े की स्थिति पैदा करना.
ठट्टा लाण	- मजाक उड़ाना.
डोरि लगण	- देव दर्शन का अवसर मिलना.
दिन देखण	- भला समय देखना.
दिन लौटण	- अच्छे दिन आना.
नाक काट्यण	- बेइज्जती होना.
नाक उस्यण	- गुस्सा होना.
नाक लगण	- बुरा मानना.
नाक रखण	- इज्जत रखना.
नाड़ पकड्न	- कमजोरी पकड़ना.
नौं जाण	- नाम न लेना.
नौ धरौण	- नाम रखना.
पंख लगण	- पंख लगना.
पड्त पड्ण	- मेल बैठना.
पर लगण	- दोषारोपण होना.
पिठैं देण	- रिश्ता स्वीकार करना.
पिठैं लगण	- नुकसान होना.
पेट टूटण	- गर्भपात होना.
पैंणु बांटण	- प्रचार करना.
भचाक लगण	- नुकसान होना.
फसल लगण	- पशु का गाभिन होना.
फूक सरकण	- भयभीत होना.
बात औण	- पशु का गर्मी में आना.
बात भीजण	- बात समझ में आना.

बौग मारण	- अनदेखा करना.
भाग फूटण	- अनिष्ट होना.
भूजी बूतण	- बुरा करना.
भौंण पुर्यौण	- हाँ में हाँ मिलाना.
मर्च लगण	- बुरा लगना.
रोंदेड़ा लाण	- विपत्ति सुनाना.
लोड़ी लगण	- नुकसान पहुंचना.
संगराद बजौण	- खानापूर्ति करना
सार सर्न	- काम चलाना.

1.5 पहेलियाँ

पहेलियों में सांकेतिक प्रश्न किया जाता है। श्रोता को संकेतों को समझना पड़ता है। कारण कुछ भी हो पर जब वक्ता अपनी बात सीधे-सीधे रखने में असुविधा का अनुभव करता है तब वो पहेलियों के रूप में अपनी बात रखता है। गढ़वाली में पहेलियों के लिए आणा और भ्वींणा शब्द हैं। गढ़वाल में इनकी परम्परा न जाने कब से चली आ रही है। इन पहेलियों का उद्देश्य बुद्धि-परीक्षा, मनोरंजन तथा अर्थ-गौरव है। गढ़वाली लोकसाहित्य में उपलब्ध कुछ पहेलियाँ (आणा/भ्वींणा) इस प्रकार हैं -

- अफु अगनै जाणी, पिछनै अंदड़ा-पिंदड़ा औणा छन (सुई)
- उर्खयाळा उंद कीड़ा (चावल)
- काला डांडा रौंदु छौं, लाल पाणि पेंदु छौं। ज्ञन (जूँ)
- गज भर कपड़ा बार पाट तौंणि लगैंन तीन-सौ-साट (एक वर्ष)
- घर औंदू बण मुख, बण जाँदु घर मुख (कुल्हाड़ा)
- छोटि छोर्यो लम्बु धौंपेलो (सुई-धागा)
- छोटि छोर्योंकु मिट्ठु कल्यो (मधुमक्खी)
- धार मा अधा रोटि (चाँद)
- बत्तीस भै कुटदारा अर एक नौनी स्वैरदारी (दाँत-जीभ)
- अफु अगनै जाणी, पिछनै अंदड़ा-पिंदड़ा औणा छन (सुई)
- रात बचि जाँद, दिन मरि जाँद (पशुओं को खूंटे से बांधने की रस्सी)
- हाड़ न मास, गळगलू गात (जोंक)

1.6 सारांश

लोकोक्ति का शाब्दिक अर्थ लोक की उक्ति है। किंतु लोक की हर उक्ति लोकोक्ति नहीं होती। लोक की वही उक्ति लोकोक्ति बनती है जिससे कोई सीख देने वाली कथा या आख्यान जुड़ा हो। लोकोक्ति के लिए गढ़वाली में औखाण/औखाणा तथा पखाण/पखाणा शब्द प्रयुक्त होते हैं। संस्कृत के आख्यान या उपाख्यान शब्दों से इनकी व्युत्पति मानी जा सकती है। लोकोक्तियों को पुरखों का अनुभवजन्य सूत्र वाक्य भी कह सकते हैं।

मुहावरों को साधारण अर्थ छोड़कर किसी विशिष्ट अर्थ को प्रकट करने वाले वाक्यांश के रूप में परिभाषित किया जाता है। गढ़वाली लोक में कई हिंदी के मुहावरों के लौकिक संस्करण भी देखने को मिलते हैं। गोबर गणेश होना गढ़वाली में मोळो मादेव (गोबर के महादेव) हो जाता है। जहाँ रामकहानी हिंदी में आत्मवृतांत के लिए प्रयुक्त होता है वहीं गढ़वाली में रामैण लगौण, लम्बे वृतांत के अर्थ देने वाला मुहावरा बन जाता है।

पहेलियोँ में सांकेतिक प्रश्न किया जाता है। श्रोता को संकेतों को समझना पड़ता है। कारण कुछ भी हो पर जब वक्ता अपनी बात सीधे-सीधे रखने में असुविधा का अनुभव करता है तब वो पहेलियों के रूप में अपनी बात रखता है।

1.7 शब्दावली

उद्भूत- उत्पन्न, ताम्रपत्राभिलेख- ताँबे के पत्रक पर लिखा हुआ अभिलेख, लिपि- ध्वनि

1.8 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

1. लोकोक्ति का शाब्दिक अर्थ.....है।
2. साधारण अर्थ को छोड़कर किसी ..... को प्रकट करने वाला वाक्यांश मुहावरा कहलाता है ।
3. गढ़वाली में ..... के लिए आणा और भ्वींणा शब्द हैं।
4. काणा त्वै क्य चैंद, द्वी आँखा साणा का हिंदी भावार्थ अंधा क्या चाहे, दो आँखें है। (सत्य/असत्य)
5. जंत-जोड़ कन्न मुहावरे का अर्थ है प्रबंध/व्यवस्था का न होना है। (सत्य/असत्य)
6. छोटि छोर्योंकु मिट्ठु कल्यो पहेली का उत्तर है?

उत्तर- 1. लोक की उक्ति, 2. विशिष्ट अर्थ, 3. पहेलियों,

4. सत्य, 5. असत्य, 6. मधुमक्खी

1.9 संदर्भ

1. **Proverbs & Folklores of Kumaun & Garhwal** : Pt. Ganga Dutt Upreti
2. भारतीय लोक संस्कृति का संदर्भ : मध्य हिमालय : डॉ. गोविन्द चातक
3. गढ़वाली भाषा और उसका साहित्य : डॉ. हरिदत्त भट्ट 'शैलेश'
4. उत्तराखण्ड के लोकसाहित्य का आयामी परिदृश्य : प्रो. डी.डी. शर्मा
5. गढ़वाली लोकसाहित्य की प्रस्तावना : मोहनलाल बाबुलकर
6. गढ़वाली मुहावरों-कहावतों का वृहद् संग्रह : पुष्कर सिंह कण्डारी
7. गढ़वाली व्याकरण और शब्द संपदा : रमाकांत बेंजवाल व बीना बेंजवाल

2.0 निबन्धात्मक प्रश्न

1. गढ़वाली लोकसाहित्य में लोकोक्तियों के महत्व का सोदाहरण वर्णन कीजिए।
2. गढ़वाली लोकसाहित्य में मुहावरों व पहेलियों के महत्व का सोदाहरण वर्णन कीजिए।

इकाई-7

गढ़वाली लोकसाहित्य का ऐतिहासिक महत्व

(Historical Importance of Garhwali Folk Literature)

इकाई संरचना

1.1 प्रस्तावना

1.2 उद्देश्य

1.3 लोकसाहित्य अध्ययन का इतिहास

1.4 लोकगाथाओं में इतिहास

1.5 लोकगीतों में इतिहास

1.6 लोककथाओं में इतिहास

1.7 लोकोक्तियों में इतिहास

1.8 सारांश

1.9 शब्दावली

2.0 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

2.1 संदर्भ ग्रंथ सूची

2.2 निबंधात्मक प्रश्न

1.1 प्रस्तावना

लोकसाहित्य में इतिहास के महत्वपूर्ण सूत्र संरक्षित होते हैं। इसीलिए लोकसाहित्य को इतिहास का श्रुत दस्तावेज़ भी कहते हैं। लोकसाहित्य में कल्पना के बजाय प्रत्यक्षानुभूति की प्रधानता होती है। अतिरंजना का पुट जरूर होता है, पर उसे आसानी से चिह्नित किया जा सकता है। पाठान्तर भी लोकसाहित्य में मिलते हैं पर सभी पाठों के उभयनिष्ट तथ्यों के आधार पर प्रामाणिक इतिहास को पकड़ना कठिन नहीं होता है। इतिहास के अध्येता लोकसाहित्य को ऐतिहासिक सामग्री के तौर पर प्रयोग करते हैं। विशेषकर जनसामान्य की सामाजिक, आर्थिक और धार्मिक स्थिति को समझने के लिए। अधिकतर राज्याश्रयी इतिहासकारों का रुझान राजपरिवारों और सामन्तों के इतिहास पर केन्द्रित होता है जिनमें उनकी हार-जीत, रीति-नीति, राज्य की सीमाओं और सिक्कों-फरमानों का वर्णन होता है। जीवन की

प्रमुख-निर्णायक घटनाओं, उनका सुख-दु:ख भी शामिल होता है। गढ़वाली लोकसाहित्य की बात करें तो कत्यूरी काल के राज्याश्रयी भाट व चंपू जरूर अपवाद हैं जिन्होंने राजपरिवारों से सम्बंधित इतिहास को गेय-गाथाओं के रूप में ढाल कर सदियों के लिए संरक्षित करने का महत्वपूर्ण कार्य किया। वाचिक परम्परा से इन गेय-गाथाओं का गायन-श्रवण सदियों बाद भी अनवरत गतिमान है।

1.2 उद्देश्य

गढ़वाली पाठ्यक्रम की यह अध्ययन सामग्री ऐसे पाठकों के लिए बनाई जा रही है जिन्हें गढ़वाली सीखनी है तथा गढ़वाली भाषा के विषय में जानना है। इसमें अध्ययनरत विद्यार्थी ऐसे भी होंगे जिन्हें गढ़वाली समझ नहीं आती है। इसलिए समझाने के लिए विवरण हिंदी में दिया जा रहा है। इकाई के अध्ययन के बाद आप -

- गढ़वाली लोकसाहित्य के अध्ययन के इतिहास का वर्णन कर सकेंगे।
- गढ़वाली लोकगाथाओं के ऐतिहासिक महत्व का वर्णन कर सकेंगे।
- गढ़वाली लोकगीतों के ऐतिहासिक महत्व का वर्णन कर सकेंगे।
- गढ़वाली लोककथाओं के ऐतिहासिक महत्व का वर्णन कर सकेंगे।
- गढ़वाली लोकोक्तियों के ऐतिहासिक महत्व का वर्णन कर सकेंगे।

1.3 लोकसाहित्य अध्ययन का इतिहास

गढ़वाली लोकसाहित्य अध्ययन पर दृष्टिपात करें तो गढ़वाली लोककथाओं का पहला लिखित उल्लेख, गढ़वाल के वरिष्ठ सहायक कमिश्नर ट्रैल के लेखों में मिलता है। ये लेख उन्नीसवीं सदी के तीसरे दशक में रॉयल एशियटिक सोसायटी में प्रकाशित हुए थे। कुछ लोककथाओं का उल्लेख 1833 की गढ़वाल रेवन्यू सेटलमेंट रिपोर्ट में भी मिलता है। राय पं. गंगाधर उप्रेती बहादुर, जो लम्बे समय तक गढ़वाल के वरिष्ठ सहायक कमिश्नर रहे, ने गढ़वाल की लोककथाओं की काफी खोजबीन की। उनके नोट्स रिव. ई. एस. ओकले द्वारा संरक्षित किये गये। 1935 में रिव.ई.एस. ओकले और तारादत्त गैरोला द्वारा गढ़वाल, कुमाऊँ अंचल की लोककथाओं, विश्वासों और गाथाओं का अंग्रेजी में अनूदित संकलन हिमालयन फोकलोर नाम से प्रकाशित किया गया।

1.4 लोकगाथाओं में इतिहास

गढ़वाली लोकगाथाएँ प्राचीन गेय रचनायें है, जिनमें बहुत ही लोकप्रिय आख्यानों का गायन वृतान्त से होता है। लोक में जिस प्रकार वाचिक परम्परा से लोकसाहित्य की कहावतें आणा पखाणा, भ्वीणा आदि विधाएं सदियों की यात्रा करके वर्तमान तक पहुँची हैं उसी प्रकार लोकगाथा भी पहुँची हैं।

गढ़वाली लोकगाथाओं में मुख्य रूप से परम्परागत, पौराणिक धार्मिक तथा वीरतापूर्ण आख्यान मिलते हैं। धार्मिक गाथाएँ जिन्हें जागर भी कहा जाता है। जागर पूजा-पद्धति गढ़वाल के आदिम निवासियों की पूजा-पद्धति है। लोकगाथाओं में वेद-पुराणों और ब्राह्मण ग्रन्थों के अंश भी मिलते हैं। गढ़वाल की जागर गाथाओं में कृष्ण, राम, देवी, निरंकार, गोरिल, रमोल, पाण्डव आदि की धार्मिक और पौराणिक गाथाएँ शामिल हैं। इनमें पौराणिक देवता भी हैं और स्थानीय देवता भी। स्थानीय देवताओं में झालीमाली, नागरजा, नरसिंग, घण्डियाल, खेत्रपाल, गोरिल, निरंकार आदि थे। भूत-प्रेत, परियों और आत्माओं में विश्वास का प्रमाण भी इन गाथाओं में मिलता है। ये विश्वास प्रागैतिहासिक काल से चला आ रहा है और गढ़वाल में ही नहीं सारी दुनिया में व्याप्त था। परियों को गढ़वाल में आछरी, मांतरी, भराड़ी या चांचरी कहा जाता है। भूत-प्रेत को यहाँ भूत, प्रेत, मसान, खबेस आदि कहा जाता है।

जहां तक वीरगाथाओं (पवाड़ों) का प्रश्न है, वे मध्यकाल में ही रची गयी। गोविन्द चातक का मानना है कि गढ़वाली वीरगाथाएँ विभिन्न युद्धों से सम्बंधित हैं। इनका कालखण्ड 800 ई0 से 1700 ई0 के बीच का है। गढ़वाली वीरगाथाएँ अतिरंजनापूर्ण अवश्य हैं किन्तु उनमें ऐतिहासिक सामग्री का अभाव नहीं है।

लोकगाथाओं में ऐतिहासिक सामग्री का वर्णन करते हुए तारादत्त गैरोला हिमालयन फोकलोर में लिखते हैं कि सबसे पुरानी लोकगाथा कफ्फू चौहान की है जो गढ़वाल नरेश अजयपाल का समकालीन था। इसी गाथा से ये जानकारी मिलती है कि अजयपाल ने कम से कम 52 गढ़ों को विजित कर अपने अधीन कर दिया था। एक गाथा में राजा मानशाह और चम्पावतगढ़ कुमाऊँ के राजा लक्ष्मीचंद के युद्ध का वर्णन मिलता है। गाथाओं में चम्पावतगढ़ के गुरू ज्ञानचंद का भी वर्णन मिलता है। काला भण्डारी की गाथा में ज्ञानचंद काला भण्डारी को अपने चार मल्लों से लड़ने को कहता है। काला भण्डारी के चारों को हराने पर उसे बहुत सारा ईनाम दिया गया था। अजवा बंपाला की गाथा में ज्ञानचंद मणि पड्यार, सालू-मालू और अजवा बंपाला को पहलवानों से लड़ने के लिए बुलाता है। ज्ञानचंद के ही उकसाने पर कुंजपाल मारा जाता है तो कुंजपाल का पुत्र मात्र 12 साल की अवस्था में ज्ञानचंद से युद्ध कर उसे मार देता है। गढ़वाली लोकगाथाओं में राजकुंवरों का जो दूसरा समूह मिलता है वो कत्यूरी राजाओं का है। इनकी राजधानी मूल रूप से जोशीमठ के समीप थी। कत्यूरियों का प्राचीनतम अभिलेख 9वीं सदी का प्राप्त हुआ है। जयदेव पंवार, जैसिंह देव, प्रीतमदेव, धामदेव, आशंतीराय और बासंतीराय का गढ़वाली लोकगाथाओं में विशेष वर्णन मिलता है। प्रीतमदेव की गाथा में जोशीमठ में नरसिंह मंदिर का वर्णन मिलता है। एटकिंशन ने अपने गजेटियर में जो वंशावली दी है वो आशंतिदेव से शुरू होती है और प्रीतमदेव व धामदेव इसमें नौवें व दसवें नम्बर पर हैं। धामदेव दक्षिणी गढ़वाल में पाटलीदून चला

गया था। एक बात स्पष्ट है कि एटकिंशन के गजेटियर में दी गयी वंशावली और लोकगाथाओं में वर्णित वंशावली में बहुत अधिक अंतर नहीं है।

धामदेव, ब्रह्मदेव, आसंतिराय, बासंतिराय का वर्णन लोकगाथाओं में मिलता है। वीरगाथाओं में, जिन्हें गढ़वाली में पवाड़ा कहा जाता है, इतिहास के स्पष्ट सूत्र मिलते हैं। पवाड़ा शब्द मध्यकाल में प्रचलित हुआ माना जाता है। गुजराती और मराठी साहित्य में पवाड़े मिलते हैं वहाँ ये वीरगाथा गायन विधा है। मराठी में इसे पोवाड़ा कहा जाता है। ऐसा माना जा सकता है कि सत्रहवीं शताब्दी में मराठों के उत्तर भारत में प्रभाव के दौरान ही गढ़वाल नरेशों ने भी अपने भाट-चंपुओं से पवाड़ा गायन को प्रोत्साहित किया होगा। पवाड़ों के माध्यम से ही गढ़वाल के वीर सेनापतियों की शौर्यगाथाएँ वाचिक परम्परा से जन-जन तक पहुँची। मानशाह, दुलारामशाह, महिपतशाह, मेदिनीशाह आदि के शासनकाल में कुमांऊ, सिरमोर व दापा-तिब्बत के राजाओं के साथ अनेक युद्ध हुए। रिखोला लोदी और माधोसिंह भण्डारी के पवाड़ों में इनका वर्णन मिलता है। रोहिलों व गोरखों के साथ हुए संघर्षों के संकेत भी गाथाओं में मिलते हैं। ओकले और तारादत्त गैरोला ने हिमालयन फोकलोर में जिन वीरगाथाओं को संकलित किया है उनमें गढ़वाल, कुमाऊं क्षेत्र की वीरगाथाएं सम्मिलित की हैं उनमें गढू सुम्याल, सूरजकुंवर, ब्रह्मकुंवर, जयदेव पंवार, काला भण्डारी, रणू झंकरू, हरि हिंडवाण, तीलू रौतेली और सुप्या रौत के पवाड़े शामिल हैं।

1.5 लोकगीतों में इतिहास

गढ़वाली लोकगीतों से पता चलता है कि यहाँ के मूल निवासी खस थे। उससे भी पहले यक्ष, गंधर्वों के प्रभाव की जानकारी मिलती है। हूण, रोहिलों, गोरखों, सिरमोरियों तथा कुमांउनी कत्यूरियों के साथ हुए संघर्ष की ऐतिहासिक जानकारी के महत्वपूर्ण सूत्र इन लोकगीतों में मिलते हैं। तंत्र-मंत्र सम्बंधी गीतों में वज्रयानी नाथ-सिद्ध प्रभाव स्पष्ट है। गोरखनाथ, सत्यनाथ, मछेन्दरनाथ के नाम इनमें बार-बार आते हैं। गढ़वाल के राजा अजयपाल तो स्वयं भी नाथपंथी बन गये थे। अजयपाल, श्यामशाह और रानी कर्णावती के नामों की तो आण (सौगंध) भी दी जाती है।

गढ़वाल में चाचा-भतीजे (प्रद्युम्नशाह-पराक्रमशाह) के बीच सत्ता-संघर्ष के समय कुछ दरबारी भी अंदरखाने षड़यंत्र कर सत्ता हथियाने का प्रयास कर रहे थे। परिणामस्वरूप गढ़वाल पर गोरखों का कब्जा हुआ और जनता को गोरखों के अत्याचारी शासन को झेलना पड़ा। रामा और धरणी खण्डूड़ी नाम के दो भाई भी षड़यंत्रकारी दरबारियों में शामिल थे। लोक ने अपना आक्रोश, दोनों भाइयों की करतूत को कैसो चालो तेरो गढ़राज गीत रच कर प्रकट किया है। गोरखों के बारह साल के अत्याचारी शासन को भी गीतों मे दर्ज़ किया गया है।

ये भी ऐतिहासिक तथ्य है कि ओरंगजेब के शासनकाल में दाराशिकोह के पुत्र सलमान शिकोह ने गढ़वाल राज्य की राजधानी श्रीनगर में शरण ली थी। सलमान शिकोह के साथ ही कुछ चित्रकार और शिल्पी-कारीगर भी आए थे जो बाद में यहीं स्थायी रूप से बस गये थे। इन्हीं में चूड़ी-कंगन बनाने में सिद्धहस्त कारीगर भी थे जिन्हें स्थानीय भाषा में चुड़ेर के रूप में जाना जाता था। यही चुड़ेर अपने हाथ की बनायी हुई चूड़ियों को बेचने गाँव-गाँव में जाया करते थे और इन्हीं के हाथों बनी जंगार चूड़ियों के प्रति दीवानगी लोकगीत में अभिव्यक्त हुई है। चूड़ियाँ, गढ़वाली महिलाओं के आभूषणों में अठारहवीं शताब्दी की शुरुआत में शामिल हुई। इससे पहले यहाँ हाथों में चाँदी की पौंछी और धागुले पहनने का चलन था। निश्चित ही शुरुआत में ये संभ्रांत परिवारों की महिलाओं के आभूषणों में शामिल रही होंगी पर कम लागत और आकर्षक रंग-डिजाइन होने से आम महिलाओं में भी ये शीघ्र ही लोकप्रिय हो गयी होंगी।

1930 में, गढ़वाल का जलियांवाला काण्ड के नाम से जाना जाने वाला तिलाड़ी ढंडक (विद्रोह) की जानकारी देने वाले गीत भी उपलब्ध हैं तो टिड्डी-दल आक्रमण, भूकम्प, बाढ़-आपदा और आदमखोर बाघ की दहशत के भी। लोकभाषा गढ़वाली इस मामले में धनी है कि उसके खजाने में प्रथम व द्वितीय विश्वयुद्ध के अनुभवों को लेकर रचे गए बहुत ही लोकप्रिय और करुण लोकगीत उपलब्ध हैं। इन गीतों की जुबानी उस लाम की कथा भी पढ़ी-सुनी जा सकती है जिसे वीर गढ़वाली सैनिकों की पत्नियां और परिजन अपने ही मुल्क़ में अपने घर-गाँव में लड़ रही थी और जो इतिहास-ग्रंथों में कहीं उल्लिखित भी नहीं है। आज़ादी के बाद के युद्धों की जानकारी देने वाले लोकगीत भी रचे गये हैं।

स्वतंत्रता आंदोलन के गाँधी, नेहरू तथा सुभाष जैसे नायकों के योगदान को भी लोकगीतों में रेखांकित किया गया है।

1.6 लोककथाओं में इतिहास

गढ़वाल का प्राचीन स्वीकृत आदर्श वीर-भाव रहा है। इसलिए ऐतिहासिक कथाओं में वीर-गाथाएँ अधिक मिलती हैं - कफ्फू चौहान, माधो सिंह, जगदेव पँवार, कालू भण्डारी, जीतू तथा रिखोला ऐसी ही कथाएँ हैं।

गढ़वाली लोक-कथाएँ स्थानीय लोक-मानस को अपने अनुकूल प्रतिबिम्बित करती हैं। आदिम से आदिम युग के आदर्श मनोभाव, नैतिकता और लोक-जीवन के अवशेष उनमें मिल जाते हैं। आखेट, कृषि तथा सामन्त युग के चित्र इनमें आसानी से देखे जा सकते हैं। यद्यपि वे अतिरंजना, मानसिक उड़ान और

अद्भुत तत्व से आवृत होती हैं, फिर भी उनमें सामाजिक यथार्थ, लोक की दृष्टियों, आदर्शों और मूल्यों को चुना जा सकता है। लोकसाहित्य में वीर-भड़ों की कथा, गाथाओं के रूप में मिलती हैं। गेय रूप में याद रखना आसान होता है। समय के साथ वीरगाथा या पवाड़ों का पेशेवर गायन करने वाले कम होते जा रहे हैं। इससे ये गाथाएँ अब कथाओं के रूप में ही अधिक प्रचलित रह गयी हैं। गढ़वाल के वीर सेनापतियों की शौर्यगाथाएँ वाचिक परम्परा से जन-जन तक पहुँची। मानशाह, दुलाराम शाह, महिपत शाह, मेदिनीशाह आदि के शासनकाल में कुमांऊ, सिरमोर व दापा-तिब्बत के राजाओं के साथ अनेक युद्ध हुए। रिखोला लोदी और माधोसिंह भण्डारी के पवाड़ों में इनका वर्णन मिलता है। रोहिलों व गोरखों के साथ हुए संघर्षों के संकेत भी गाथाओं में मिलते हैं। गढू सुम्याल, सूरजकुंवर, ब्रह्मकुंवर, जयदेव पंवार, काला भण्डारी, रणू झंकरू, हरि हिंडवाण, तीलू रौतेली और सुप्या रौत के पवाड़े प्रमुख वीरगाथाएं हैं।

1.7 लोकोक्तियों में इतिहास

लोकोक्तियों के मूल में आख्यान होता है। समय के साथ आख्यान विस्मृत हो जाता है और लोकोक्ति चलती रहती है। लोकोक्तियाँ ऐतिहासिक महत्व की भी होती हैं, जिनसे इतिहास के महत्वपूर्ण सूत्रों का पता चलता है। गढ़वाली लोकसाहित्य में भी ऐतिहासिक महत्व की लोकोक्तियों की कमी नहीं है।

दमड़ी को साहू, टिपरी को राऊ एक लोकोक्ति है जिसका भावार्थ है कि दमड़ी का मालिक भी अपने को सेठ-व्यापारी और टीले पर रहने वाला राजा समझने लगा है। इतिहास में ऐसी स्थिति, कत्यूरी शासन के क्षीण हो जाने और अजयपाल के उभरने के बीच मिलती है। माना जाता है कि उस अवधि में गढ़वाल में एक सौ से अधिक गढ़ थे। अजयपाल अपनी राजधानी को गढ़वाल के केन्द्रीय स्थल देवलगढ़ में ले गया और बावन प्रमुख गढ़ों को जीतकर सम्पूर्ण गढ़वाल पर अपना प्रभुत्व कायम किया।

तोपाल की तोप ताप चौंडाळ को राज सातवीं शताब्दी की घटना है। चाँदपुर गढ़ी के दो सामंत तोपाल और चौंडाल थे। दोनों की महत्वाकांक्षा राजगद्दी हासिल करना था। तोपाल जब तक अपनी तोपों को तैयार करता रही, चौंडाल राजगद्दी पर बैठ भी गया।

सामसाह की कुळई, साम्मी त साम्मी, बांगी त बांगी सामसाह (श्यामशाह) जहाँगीर का समकालीन, गढ़वाल का राजा था। अपनी हट, सनक और क्रोध के लिए कुख्यात। इस लोकोक्ति का भावार्थ है कि जो राजा कहे वो सही।

जु खौ पनैकि पुंगड़ि, सु द्यौ लोहबागढ़ मुण्डळि गढ़वाल-कुमाऊँ के सीमान्त पर स्थित होने के कारण लोहबागढ़ में दोनों राज्यों की सेनाओं में निरंतर संघर्ष होता रहता था। लोहबागढ़ के मोर्चे पर लड़ने के लिए जनता को प्रोत्साहित करने के लिए गढ़वाल नरेश अजयपाल ने ये आदेश जारी किया था जो

लोकोक्ति बन गयी। पनाई, गौचर से लगा हुआ वही गाँव है जिसके उपजाऊ खेतों में अब हवाई पट्टी बनी हई है।

कख रैगि नीति कख रैगि माणा एक स्याम सिंग पटवारिन कख-कख जाणा ये लोकोक्ति ब्रिटिश शासनकाल की है। श्याम सिंह पटवारी के द्वारा कमिश्नर गढ़वाल के उस सवाल के जवाब में कही गयी जिसमें उससे पूछा गया था कि वो नीति घाटी में किसी घटना की जाँच रिपोर्ट समयान्तर्गत क्यों नहीं पेश कर पाया। नीति और माणा गढ़वाल के सीमांत दुर्गम घाटियां हैं। नीति घाटी में घटना के समय पटवारी माणा घाटी में थे और मार्ग अवरुद्ध होने के कारण समयान्तर्गत कमिश्नर को जाँच रिपोर्ट नहीं दे पाये थे।

बेकार से बेगार भलि राजशाही और ब्रिटिश काल में सरकारी हाकिम और कारिंदों के क्षेत्रीय भ्रमण के अवसर पर बेगार करनी पड़ती थी। अकर्मण्यता को हतोत्साहित करने के लिए ये लोकोक्ति प्रचलित हुई कि बेकार से बेगार भलि।

मेरि गंगा होली त मैं मू आली ये लोकोक्ति राजा मेदिनीशाह से सम्बंधित है। कुम्भ के अवसर पर एक बार विलम्ब से पहुँचने के कारण उन्हें गंगातट पर डेरा जमाने के लिए जगह नहीं मिली। मजबूरी में उन्हें कुछ दूर जंगल की ओर अपना तम्बू लगाना पड़ा। ऐसा करते हुए उन्होंने कहा कि मेरि गंगा होली त मैं मू आली। हुआ भी ऐसा ही रात को भयंकर बारिस हुई और नदी की एक धारा राजा के तम्बू के समीप से होकर बहने लगी।

उंदो को साबण उब्बो को लूण अर्थात् साबुन नीचे (मैदानी मंडियों) से और नमक ऊपर (तिब्बत) से। उन्नीसवीं सदी के चौथे-पाँचवें दशक से गढ़वाल में मोटर मार्ग बनने की शुरुआत हुई। इससे पूर्व तक ये क्षेत्र अपनी सीमित आवश्यकताओं में आत्मनिर्भर था। सिर्फ़ नमक का कोई स्थानीय विकल्प नहीं था। नमक तिब्बत से व्यापार करने वाले भोटिया-व्यापारियों से वस्तु-विनिमय के आधार पर खरीदा जाता था। साबुन-डिटर्जेंट की जगह भी प्रारम्भ में कुछ स्थानीय उत्पादों का प्रयोग किया जाता था। आगे चल कर साबुन भी एक आवश्यकता बन गया। किसी सम्पन्न घर के बारे में सगर्व बताया जाता था कि सब कुछ है वहाँ - उंदो को साबण उब्बो को लूण।

गढ़वाल कटक, कुमौं सटक, कुमौं कटक, गढ़वाल सटक अर्थात् स्थानीय लोग गढ़वाल की तरफ सेना के डेरा डालने पर कुमांऊ की तरफ खिसक जाते थे और कुमांऊ की तरफ सेना आ जाने पर गढ़वाल की तरफ।

इकावनी-बावनी होण सम्वत् 1851-1852 (1795 ई0) भयंकर अकाल जैसी स्थिति होना।

गोरख्याणी मचाना गढ़वाल में1803-1815 का अत्याचारी गोरखा शासनकाल के कारण अन्यायी, अत्याचारपूर्ण शासन को गोरख्याणी मचाना कहा जाता है।

1.8 सारांश

लोकसाहित्य में इतिहास के महत्वपूर्ण सूत्र संरक्षित होते हैं। इसीलिए लोकसाहित्य को इतिहास का श्रुत दस्तावेज़ भी कहते हैं। लोकसाहित्य में कल्पना के बजाय प्रत्यक्षानुभूति की प्रधानता होती है। अतिरंजना का पुट जरूर होता है, पर उसे आसानी से चिह्नित किया जा सकता है। पाठान्तर भी लोकसाहित्य में मिलते हैं पर सभी पाठों के उभयनिष्ट तथ्यों के आधार पर प्रामाणिक इतिहास को पकड़ना कठिन नहीं होता है। इतिहास के अध्येता लोकसाहित्य को ऐतिहासिक सामग्री के तौर पर प्रयोग करते हैं। विशेषकर जनसामान्य की सामाजिक, आर्थिक और धार्मिक स्थिति को समझने के लिए। अधिकतर राज्याश्रयी इतिहासकारों का रुझान राजपरिवारों और सामन्तों के इतिहास पर केन्द्रित होता है जिनमें उनकी हार-जीत, रीति-नीति, राज्य की सीमाओं और सिक्कों-फरमानों का वर्णन होता है।

गढ़वाली लोकगाथाएं प्राचीन गेय रचनायें है, जिनमें बहुत ही लोकप्रिय आख्यानों का गायन वृतान्त से होता है। लोक में जिस प्रकार वाचिक परम्परा से लोकसाहित्य की कहावतें आणा पखाणा, भ्वीणा आदि विधाएं सदियों की यात्रा करके वर्तमान तक पहुँची हैं उसी प्रकार लोकगाथा भी पहुँची हैं। लोकगाथाओं में ऐतिहासिक सामग्री का वर्णन करते हुए तारादत्त गैरोला हिमालयन फोकलोर में लिखते हैं कि सबसे पुरानी लोकगाथा कफ्फू चौहान की है जो गढ़वाल नरेश अजयपाल का समकालीन था। इसी गाथा से ये जानकारी मिलती है कि अजयपाल ने कम से कम 52 गढ़ों को विजित कर अपने अधीन कर दिया था। एक गाथा में राजा मान शाह और चम्पावतगढ़ कुमाऊँ के राजा लक्ष्मीचंद के युद्ध का वर्णन मिलता है। गाथाओं में चम्पावतगढ़ के गुरू ज्ञानचंद का भी वर्णन मिलता है। काला भण्डारी की गाथा में ज्ञानचंद काला भण्डारी को अपने चार मल्लों से लड़ने को कहता है। काला भण्डारी के चारों को हराने पर उसे बहुत सारा ईनाम दिया गया था। अजवा बंपाला की गाथा में ज्ञानचंद मणि पड्यार, सालू-मालू और अजवा बंपाला को पहलवानों से लड़ने के लिए बुलाता है। ज्ञानचंद के ही उकसाने पर कुंजपाल मारा जाता है तो कुंजपाल का पुत्र मात्र 12 साल की अवस्था में ज्ञानचंद से युद्ध कर उसे मार देता है। गढ़वाली लोकगाथाओं में राजकुंवरों का जो दूसरा समूह मिलता है वो कत्यूरी राजाओं का है। इनका राजधानी मूल रूप से जोशीमठ के समीप थी। कत्यूरियों का प्राचीनतम अभिलेख 9वीं सदी का प्राप्त हुआ है। जयदेव पंवार, जैसिंह देव, प्रीतमदेव, धामदेव, आशंतीराय और बासंतीराय का गढ़वाली लोकगाथाओं में विशेष वर्णन मिलता है। प्रीतमदेव की गाथा में जोशीमठ में नरसिंह मंदिर का वर्णन मिलता है। एटकिंशन ने अपने गजेटियर में जो वंशावली दी है वो आशंतिदेव से शुरू होती है और प्रीतमदेव व धामदेव इसमें नौवें व दसवें नम्बर पर हैं। धामदेव दक्षिणी गढ़वाल में पाटलीदून चला गया

था। एक बात स्पष्ट है कि एटकिंशन के गजेटियर में दी गयी वंशावली और लोकगाथाओं में वर्णित वंशावली में बहुत अधिक अंतर नहीं है।

गढ़वाली लोकगीतों से पता चलता है कि यहाँ के मूल निवासी खस थे। उससे भी पहले यक्ष, गंधर्वों के प्रभाव की जानकारी मिलती है। हूण, रोहिलों, गोरखों, सिरमोरियों तथा कुमांउनी कत्यूरियों के साथ हुए संघर्ष की ऐतिहासिक जानकारी के महत्वपूर्ण सूत्र इन लोकगीतों में स्पष्ट सूत्र मिलते हैं। तंत्र-मंत्र सम्बंधी गीतों में वज्रयानी नाथ-सिद्ध प्रभाव स्पष्ट है। गोरखनाथ, सत्यनाथ, मछेन्दरनाथ के नाम इनमें बार-बार आते हैं। गढ़वाल के राजा अजयपाल तो स्वयं भी नाथपंथी बन गये थे। अजयपाल, श्यामशाह और रानी कर्णावती के नामों की तो आण (सौगंध) भी दी जाती है।

गढ़वाली लोकगाथाओं में मुख्य रूप से परम्परागत, पौराणिक धार्मिक तथा वीरतापूर्ण आख्यान मिलते हैं। धार्मिक गाथाएं जिन्हें जागर भी कहा जाता है। जागर पूजा-पद्धति गढ़वाल के आदिम निवासियों की पूजा-पद्धति है। लोकगाथाओं में वेद-पुराणों और ब्राह्मण ग्रन्थों के अंश भी मिलते हैं। गढ़वाल की जागर गाथाओं में कृष्ण, राम, देवी, निरंकार, गौरिल, रमोल, पाण्डव आदि की धार्मिक और पौराणिक गाथाएं शामिल है। इनमें पौराणिक देवता भी हैं और स्थानीय देवता भी।

गढ़वाल का प्राचीन स्वीकृत आदर्श वीर-भाव रहा है। इसलिए ऐतिहासिक कथाओं में वीर-गाथाएँ अधिक मिलती हैं - कफ्फू चौहान, माधो सिंह, जगदेव पँवार, कालू भण्डारी, जीतू तथा रिखोला ऐसी ही कथाएँ हैं। लोकसाहित्य में वीर-भड़ों की कथा, गाथाओं के रूप में मिलती हैं। गेय रूप में याद रखना आसान होता है। समय के साथ वीरगाथा या पवाड़ों का पेशेवर गायन करने वाले कम होते जा रहे हैं। इससे ये गाथाएँ अब कथाओं के रूप में ही अधिक प्रचलित रह गयी हैं। गढ़वाल के वीर सेनापतियों की शौर्यगाथाएँ वाचिक परम्परा से जन-जन तक पहुँची। मानशाह, दुलाराम शाह, महिपत शाह, मेदिनीशाह आदि के शासनकाल में कुमांऊ, सिरमोर व दापा-तिब्बत के राजाओं के साथ अनेक युद्ध हुए। रिखोला लोदी और माधोसिंह भण्डारी के पवाड़ों में इनका वर्णन मिलता है।

लोकोक्तियों के मूल में आख्यान होता है। समय के साथ आख्यान विस्मृत हो जाता है और लोकोक्ति चलती रहती है। लोकोक्तियाँ ऐतिहासिक महत्व की भी होती हैं, जिनसे इतिहास के महत्वपूर्ण सूत्रों का पता चलता है। गढ़वाली लोकसाहित्य में भी ऐतिहासिक महत्व की लोकोक्तियों की कमी नहीं है।

1.9 शब्दार्थ

राज्याश्रयी - किसी राजा के संरक्षण में, चंपू - चारण

1.9 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

1. लोकसाहित्य में .....के महत्वपूर्ण सूत्र संरक्षित होते हैं।
2. गढ़वाली लोककथाओं का पहला लिखित उल्लेख, गढ़वाल के वरिष्ठ सहायक कमिश्नर .....के लेखों में मिलता है।

3. अजयपाल ने कम से कम 52 .....को विजित कर अपने अधीन कर दिया था।
4. गढ़वाली लोकगाथाओं में राजकुंवरों का जो दूसरा समूह मिलता है वो ..... राजाओं का है।
5. दाराशिकोह के पुत्र सलमान शिकोह ने गढ़वाल राज्य की राजधानी .....में शरण ली थी।
6. 1930 में घटित तिलाड़ी ढंडक को गढ़वाल के .....कांड के रूप में जाना जाता है।
7. दमड़ी को साहू, टिपरी को .....।
8. तोपाल की .....ताप, चौंडाळ को राज।
9. कफ्फू चौहान, माधो सिंह, जगदेव पँवार, कालू भण्डारी, जीतू तथा रिखोला लोदी वीर-भाव की कथाएँ हैं। सत्य/असत्य
10. गढ़वाल में प्रचलित लोकोक्ति इकावनी-बावनी का आशय 1795 ई0 के दुर्भिक्ष से है। सत्य/असत्य

उत्तर- 1. इतिहास 2. ट्रैल 3. गढ़ों 4. कत्यूरी

5. श्रीनगर 6. जलियांवाला 7. राऊ 8. तोप

2.0 संदर्भ ग्रंथ

1. **Himalayan Folklore** : **Rev. E.S. Oakley, Tara Dutt Gairola**
2. भारतीय लोक संस्कृति का संदर्भ, मध्य हिमालय : डॉ. गोविन्द चातक
3. गढ़वाली भाषा और उसका साहित्य : डॉ. हरिदत्त भट्ट 'शैलेश'
4. हिमालय परिचय-1 : राहुल सांकृत्यायन, पृ. 51
5. उत्तराखण्ड का इतिहास : शिव प्रसाद डबराल
6. हिमालयन गजेटियर-1 व 2 : एटकिंसन
7. गढ़वाल का इतिहास : हरिकृष्ण रतूड़ी
8. **Garhwal Ancient and Modern** : Rai Patiram Bahadur
9. **Proverbs & Folklores of Kumaun & Garhwal** : Pt. Ganga Dutt Upreti
10. उत्तराखण्ड का नवीन इतिहास : यशवन्त सिंह कठोच

2.1 निबन्धात्मक प्रश्न

1. गढ़वाली लोकसाहित्य के ऐतिहासिक महत्व पर एक संक्षिप्त निबंध लिखिए।

2. गढ़वाली लोकगाथाओं व लोककथाओं के ऐतिहासिक महत्व को सोदाहरण स्पष्ट कीजिए।

3. गढ़वाली लोकगीतों व लोकोक्तियों के ऐतिहासिक महत्व को सोदाहरण स्पष्ट कीजिए।

इकाई-8

गढ़वाली लोकसाहित्य विविधा

(Miscellaneous Garhwali Literature)

इकाई संरचना

1.1 प्रस्तावना

1.2 उद्देश्य

1.3 बालक्रीड़ा लोकसाहित्य

1.4 लोरी लोकसाहित्य

1.5 ज्ञान-विज्ञान लोकसाहित्य

1.6 कला-शिल्प-कौशल लोकसाहित्य

1.7 सारांश

1.8 शब्दावली

1.9 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

2.0 संदर्भ ग्रंथ सूची

2.1 निबंधात्मक प्रश्न

1.1 प्रस्तावना

लोकसाहित्य लोकगीत, लोकगाथा, लोक-कथाएँ और लोकोक्तियों/मुहावरों/पहेलियों तक ही सीमित नहीं है। न ही ये ग्रामीण साहित्य का ही अर्थ रखता है। डॉ. हजारी प्रसाद द्विवेदी लोक को इस तरह परिभाषित करते हैं कि लोक शब्द का अर्थ जनपद या ग्राम्य नहीं है बल्कि नगरों और गाँवों में फैली हुई वह समूची जनता है जिनके व्यावहारिक ज्ञान का आधार पोथियां नहीं हैं। ये लोग नगर में परिष्कृत, रुचि-सम्पन्न तथा सुसंस्कृत समझे जाने वाले लोगों की अपेक्षा अधिक सरल और अकृत्रिम जीवन के अभ्यस्त होते हैं। ये ही लोग, परिष्कृत रुचि वाले लोगों की समूची विलासिता और सुकुमारता को जीवित

रखने के लिए आवश्यक वस्ततुओं का उत्पादन करते हैं। डॉ.वासुदेवशरण अग्रवाल ने अपने लेखन में जनपदीय संस्कृति और जनपदीय साहित्य का प्रयोग किया है। स्पष्ट है कि उन्होंने ग्राम्य अर्थ में जन का प्रयोग किया है। डॉ.सत्येन्द्र लोक को व्यापक बोध कराने वाला तथा जनपद शब्द को संकीर्णता का द्योतक माना है।

मतभेद को संज्ञान में रखते हुए यह मानना उचित लगता है कि लोक शब्द अंग्रेजी के फोक का सही पर्याय है। हिन्दी में फोकलोर के लिए लोकवार्ता शब्द प्रचलित है। इनसाइक्लोपीडिया ब्रिटानिका में फोकलोर शब्द की उत्पति और विषय-व्याख्या करते हुए कहा गया है कि 1886 में डब्ल्यु.जे.टॉमस ने यह शब्द सभ्य जातियों में मिलने वाले असंस्कृत समुदाय की प्रथाओं, रीति-रिवाजों तथा गूढ़ाग्रहों को अभिव्यक्त करने के लिए गढ़ा था। शब्दों के अर्थ परिभाषाओं द्वारा नियत नहीं हेाते, प्रयोग द्वारा होते हैं। आज लोकवार्ता के क्षेत्र में वह भी आ जाता है, जिसे आरम्भ की परिभाषा में जानबूझ कर बाहर रखा गया था। यथा लोकप्रिय कलाएँ तथा शिल्प। दूसरे शब्दों में भौतिक और बौद्धिक संस्कृति भी।

डॉ.वासुदेवशरण अग्रवाल का कथन है कि लोक का जितना जीवन है उतना ही लोकवार्ता का विस्तार है। लोक में बसने वाले जन-जन की भूमि और भौतिक जीवन तथा तीसरे स्थान में उस जन की संस्कृति। इन तीनों क्षेत्रों में लोक के पूरे ज्ञान का अन्तर्भाव होता है और लोकवार्ता का सम्बंध भी उन्हीं के साथ है।

लोक की समस्त अभिव्यक्तियां - गीत, कथायें, गाथाएँ, कहावतें, पहेलियां लोकवार्ता के अंग हैं। प्रकृति, जड़-चेतन जगत के सम्बंध, स्वभाव, भूत-प्रेत, जादू-टोना, शकुन, रोग, आदिम विश्वास, रीति-रिवाज, अनुष्ठान, धर्म, विज्ञान, दर्शन, सामाजिक संगठन, इतिहास तथा बौद्धिक प्रदर्शन सभी लोकवार्ता के अंग हैं।

लोकवार्ता के गीत, कथा, गाथा, नाट्य तथा लोकोक्ति-मुहावरा-पहेलियों की चर्चा पृथक इकाइयों में विस्तार से की गयी है। इस इकाई में बालक्रीड़ा, लोरी, ज्ञान-विज्ञान तथा कला-शिल्प-कौशल को विस्तृत चर्चा के लिए सम्मिलित किया जा रहा है।

1.3 उद्देश्य

गढ़वाली पाठ्यक्रम की यह अध्ययन सामग्री ऐसे पाठकों के लिए बनाई जा रही है जिन्हें गढ़वाली सीखनी है तथा गढ़वाली भाषा के लोकसाहित्य से परिचित होना है। इस अध्ययन सामग्री में हिंदी आधार-भाषा है। इकाई के अध्ययन के बाद आप -

- गढ़वाली लोकसाहित्य के विविध आयामों का वर्णन करने में सक्षम हो सकेंगे।
- बालक्रीड़ा गीत व संवाद का वर्णन करने में सक्षम हो सकेंगे।

- लोरी गीतों का वर्णन करने में सक्षम हो सकेंगे।
- ज्ञान-विज्ञान की का वर्णन करने में सक्षम हो सकेंगे।
- कला-शिल्प-कौशल का वर्णन करने में सक्षम हो सकेंगे।

1.3 बालक्रीड़ा लोकसाहित्य

बालक्रीड़ा-गीत - खेल बालसुलभ प्रवृति होती है। इसमें बच्चों को स्वाभाविक आनन्द मिलता है। निरर्थक और सार्थक तुकबंदियों को गाना और सुनना भी उनके खेल-आनंद का ही हिस्सा होता है। ये तुकबंदियाँ बच्चों के जीवन का तब से हिस्सा बन जाती हैं जब वे ठीक से चलना-बोलना भी नहीं सीखे होते हैं। बच्चों के खेल सम्बंधी गीत/संवाद लोकसाहित्य का महत्वपूर्ण भाग है। गढ़वाली में भी बच्चों के खेल सम्बंधी पर्याप्त गीत/संवाद/कथा मिलती हैं। बालक्रीड़ा गीत दो प्रकार के होते हैं। एक वे जो बच्चों के मनोरंजनार्थ बड़ों द्वारा उन्हें सुनाये जाते हैं। दूसरे वे जो बच्चे स्वयं खेलते हुए गाते हैं।

घुँघरा माई की दाळ पिसै, गीत छोटे बच्चों को घुटनों और टखनों के बीच लिटाकर, उन्हें झुलाते हुए गाया जाता है।

घुँघरा माई की दाळ पिसै।
घुँघरा माई की दाळ पिसै।
ग्यूं-जौ का झिंस झिसै
घुँघरा माई की दाळ पिसै।
मेरी पळ्योख त्वी बिसै।
घुँघरा माई की दाळ पिसै।

पंवळी गौड़ि पंवळी संवाद बच्चे स्वयं लय में बोल-गाकर आनंदित होते हैं। इस महत्वपूर्ण बाल-संवाद में बच्चे खेल-खेल में जलचक्र और उसके महत्व से भी परिचित हो जाते हैं।

पंवळी गौड़ि पंवळी गौड़ि, उज्याड़ किलै खांदी?
ग्वस्यूं घास नि देंदा।
ग्वस्यूं-ग्वस्यूं तुम घास किले नि देंदा?
डाळीऽ नि मौळदी।
डाळीऽ-डाळी तु किले नि मौळदी?

बरखैऽ नि होंदी।
बरखा-बरखा तु किले नि होंदी?
सर्गे नि फटदू।
सर्गऽ-सर्ग तु किले नि फटदू?
बादलै नि औंदा।
बादळऽ-बादल तुम किले नि ओंदा?
क्वी बुलांदै नी।
फेर लोग बादल बुलौंदा, सर्ग फटदू, बरखा होंदी।
डाळी मोळदी, ग्वस्यूं घास देंद।
पंवळी खांदी उज्याड़ नि जांदी।

एक और बालगीत है, जिसे बच्चे खेलते हुए गाते हैं, खास कर उस समय जब पूरी-पकोड़ी जैसे पकवान बनाये जा रहे हों।

तांति तांति पकोड़ी
घ्यू मा झकोड़ी
रावण झोली
घ्यू की कमोली।

बिराळी बिराळी कख जांदी?, बल माछा मन्न भी इसी तरह एक रोचक बाल-संवाद है।

1.4 लोरी लोकसाहित्य

छोटे बच्चों को नींद दिलाने के लिए थपकी देकर जो गीत गाये जाते हैं उन्हें लोरी कहते हैं। लोरी में, शब्दार्थ से लय अधिक महत्वपूर्ण होती है। रोता हुआ बच्चा लोरी की लय और थपकी की थाप से तंद्रा में चला जाता है। फिर वो स्वयं भी लोरी की लय के साथ अपना अस्पष्ट स्वर मिलाने का प्रयास करते हुए निद्रामग्न हो जाता है। छोटा बच्चा, जो अभी बोलने-समझने में सक्षम नहीं होता, वो भी लोरी की स्वरलहरी और तालबद्ध-थपकियों को बखूबी पहचान सकता है। लोरी के प्रभाव में, शिशु ज्ञानेन्द्रियां उसे निश्चिंत होकर सोने का संकेत प्रदान करती हैं।

गढ़वाली लोकसाहित्य में भी कुछ बहुत सुंदर लोरियां मिलती हैं। एक लोरी में निद्रा को आमंत्रित किया गया है। आगे बताया गया है कि लोगों के बच्चे दूध पीने/खाना खाने/माँ की गोदी/खेलने के लिए रोते हैं, जबकि हमारा बच्चा सिर्फ़ और सिर्फ़ सोने के लिए रोता है।

निंदा बाळी ऐजा हमारू बाळू स्यैजा दूदि-भात्ति खै जा।
लुकारु बाळू दूधिक रोंद, हमारू बाळू स्योणक रोंद।
निंदा बाळी एजा हमारू बाळू स्यैजा दूदि-भात्ति खै जा।
लुकारु बाळू खाणक रोंद, हमारू बाळू स्योणक रोंद।
निंदा बाळी ऐजा हमारू बाळू स्यैजा दूदि-भात्ति खै जा।
लुकारु बाळू ब्वे की ओळ्यूं, हमारू बाळू सेण की स्याण्यूं।
निंदा बाळी ऐजा हमारू बाळू स्यैजा दूदि-भात्ति खै जा।
लुकारु बाळू खेलणक रोंद, हमारू बाळू स्योणक रोंद।
निंदा बाळी ऐजा हमारू बाळू स्यैजा दूदि-भात्ति खै जा।

एक दूसरी लोरी भी लय और ध्वन्यार्थक शब्दों के सम्मिलन से बहुत ही कर्णप्रिय है। खुणमुण झाँठी अर्थात् घुंघरू बंधी लाठी। जो तू आयेगी तो फिर बाघ भी आने लगेगा। रात में चलने वाले लोग ही बाघ को बस्ती में आने के लिए उकसाते हैं। खुणमुण झाँठी, तू रात को मत आया कर। मेरे नन्हें-मुन्ने को ना डराया कर। तेरी खुणमुण सुन उसको तो नींद भी आ चुकी है।

खुणमुण झाँठी जो तिन औण।
खुणमुण झाँठी बल बाग गिजौण।
खुणमुण झाँठी रात को हिटौया।
खुणमुण झाँठी बाग को गिजौया।
खुणमुण झाँठी तिन रात नि औण।
खुणमुण झाँठी मेरु बाळू नि डरौण।
खुणमुण झाँठी खुणमुण-खुणमुण।
ऐग्ये निदरा सुणमुण-सुणमुण।

1.5 ज्ञान-विज्ञान लोकसाहित्य

ज्ञान-विज्ञान लोकसाहित्य के प्रमुख क्षेत्र निम्नांकित हैं -

1. ज्योतिष/खगोल/सगुन विषयक
2. तंत्र-मंत्र विषयक
3. स्वास्थ्य/उपचार विषयक
4. कृषिविज्ञान विषयक

ज्योतिष/खगोल/सगुन-विचार विषयक - प्राचीन काल में भले ही गढ़वाल में ऋषि-मुनियों के आश्रम रहे हों पर तदनन्तर शिक्षा की कोई व्यवस्था गढ़वाल में रही नहीं। इसकी पुष्टि इस तथ्य से होती है कि गढ़वाल में पहला प्राथमिक स्कूल कंपनी राज में सन् 1840 में श्रीनगर में खुला था जबकि पहला हाईस्कूल ब्रिटिश राज में सन् 1865 में चोपड़ा (पौड़ी में)। इससे पूर्व लिखने-पढ़ने का कौशल चुनिंदा ब्राह्मण परिवारों तक ही सीमित था और ज्योतिष विषयक ज्ञान भी उन चुनिंदा पढ़ने-लिखने में सक्षम लोगों तक ही था। किंतु इसका अर्थ ये नहीं है कि बाकी लोग ज्योतिष और शगुन शास्त्र का ज्ञान रखते ही न हों। लोकोक्तियों और लोकगीतों में लोक के तत्सम्बंधी ज्ञान के बहुत से उदाहरण मिलते हैं। ये सब जनसामान्य तक वाचिक परम्परा से पहुँचता था। फलित ज्योतिष के कुछ सूत्र-वाक्य इस तरह है -

सनि बैठी रासी, खाणक मिली बासी। (शनि की दशा चलने पर खाने को बासी मिलता

है।)

क्या कर लेलि पंदरा-पच्चिसी कि संकटा अर क्या कर लेलि पैंसठ-पिचौत्तर कि सिद्धा।

(पंद्रह-पच्चीस की अवस्था की संकटा दशा से बहुत बिगाड़ नहीं होता और पैंसठ-पिचत्तर की सिद्धा दशा भी क्या भला कर लेगी।)

चंद्रमा घ्यू-दूद, लैंदु-पाणि अर नाज मा खूब बरकत देंदु।

(चंद्रमा घी-दूध, पशुओं का दुधारू होना और अनाज में खूब बरकत देता है।)

लत्ता नयो लाण तीन बार, बुद, सुकर अर भिप्यार।

ज्वान्नि मा करड़ गरौं कि दसा दौड़-धूप करौंदन।

(जवानी में क्रूर ग्रहों की दशा दौड़-धूप करवाती है।)

औंसि लाण, औंसि खाण, औंसि परघर नि जाण।

(अमावस्या के दिन खाओ, पहनो पर दूसरे के घर कभी मत जाओ।)

छंछर छाई मंगल भाई। (परदेश से लौटते हुए शनिवार को पत्नी से और मंगलवार को भाई से मिलन अच्छा नहीं होता है।)

भलि भद्रो नि होण। (भद्रा शुभकार्यों के लिए अच्छी नहीं मानी जाती। इसलिए किसी उत्पाती बच्चे को देखकर हिकारत से ये लोकोक्ति कही जाती है।)

सूतो नि उठौण, खांदो नि सतौण। (सोते हुए किसी को जगाना नहीं चाहिए और खाते हुए को सताना।)

इसी तरह के बहुत सारे फलित ज्योतिष के सूत्र-वाक्य गढ़वाली लोकसाहित्य में मिलते हैं। इनमें से अधिकतर तो किसी भी माध्यम में संकलित भी नहीं हो पाये हैं।

तंत्र-मंत्र विषयक - गढ़वाल में तंत्र-मंत्र विषयक प्रचुर लोकसाहित्य है। इस सम्बंध में

महत्वपूर्ण यह है कि तंत्र-मंत्र सम्बंधी लोकज्ञान पर किसी जाति का विशेषाधिकार नहीं है। गढ़वाल में सभी वर्णों में तंत्र-मंत्र विशेषज्ञ मिलते हैं जिन पर लोक आस्था-विश्वास रखता है। नज़र उतारने का राई मंत्र इस तरह है -

राई मंत्र

ओं नमो आदेश!
राई किसने बोई, किसने उपायी?
राई राम ने बोई, सीता ने उपाई।
राई हाक मारी, चाक मारी,
दृष्टि मारी, मुष्टि मारी।
काळी जिभ्या, भुकदा कुकर,
रामदी बिराळी, काळा बामण,
मादेव की जटाले मारी, भीम की गदा ले मारी,
सीता का सत ले मारी, लछमन का जत से मारी।
त्वे गुरु गोरखनाथ की आण पड़ो
गढ़ी-गढ़ी की भूमिया की आण पड़ो।
मेरी भगती, गुरु की सकती,
फुर मंत्र फट स्वाहा।

तंत्र-मंत्र विषयक लोकोक्तियाँ भी हैं। जैसे -

गौंणिक अर खौंणीक क्या नि निकळ्द।

जैन करी टोणी-मोणी, तैकु होंदि रोणी।

स्वास्थ्य/उपचार विषयक - गढ़वाल में राजकीय औषधालय स्थापना की शुरुआत 1851 में हुई थी। 19वीं शताब्दी तक लगभग 15 राजकीय औषधालय ब्रिटिश गढ़वाल में थे। इससे पूर्व चिकित्सा-व्यवस्था स्थानीय बैदकी पर ही निर्भर होती थी। बैदकी का ज्ञान भी वाचिक परम्परा से ही नई पीढ़ियों को हस्तांतरित होता रहता था।

छल नाड़ चलण- नाड़ी का असामान्य चलना (ऊपरी हवा के प्रभाव में होना)

रोग की जड़ खांसी, वैर की जड़ हाँसी - रोग की जड़ खांसी और बैर की जड़ हँसी

रोग नि देखणु कम, बैरी नि देखणु छोटु - रोग को कम मत आंको और दुश्मन को छोटा मत जानो।

ओडु घर पांडा, बैद्वा घर रांडा - राजमिस्त्रियों के अपने घर छप्पर होते हैं और वैद्यों के घर भी विधवाएं होती हैं।

किनगोड़ (दारूहरिद्रि) की जड़ों के एंटीबाइटिक गुणों का लोकज्ञान गढ़वाल में बहुत पुराना है। रक्तस्राव बंद करने के लिए कुमय्या घास का रस, ज्वर-ताप आने पर गिलोय का रस प्रयोग करने के साथ बहुत सारी जड़ी-बूटियों के गुणों और उपयोग की पहचान लोक में रही है। हताजड़ी, ब्राह्मी, कड़ूवै, चोरू, सालमपंजा, डोलू, जटामासी, गुग्गल, निर्विसी आदि जड़ी-बूटियों का ज्ञान लोक को सदियों पहले से है।

कृषिविज्ञान विषयक - गढ़वाल के लोकसाहित्य में कृषिविज्ञान सम्बंधी बहुत-सी जानकारी मिलती है। इनमें अधिकांश विज्ञान की कसौटी पर आज भी सत्य हैं। कुछ अपवाद भी अवश्य हैं। घाघ और भड्डहरि की कहावतों की तरह गढ़वाली लोकसाहित्य में भी खेती-किसानी से सम्बंधित लोकोक्ति/कहावत मिलती हैं। कृषि प्रमुख व्यवसाय होने के कारण इससे सम्बंधी लोकोक्तियों वाचिक परम्परा मे ंतो हैं पर अभी सभी संकलित नहीं हो पायी हैं।

जैन करि सकि वैकि खेती।
जैन पढ़ि सकि वैकि पोथी।

धान पधान, मंडुवा राजा, ग्यूं गुलाम।
मंडुवा राजा, जब सैंका तब ताज़ा।

बरखे ह्यूं, समाळ ग्यूं।

ह्यूं पड़ो पूस, ग्यूं पड़ो झूस।

बग्वाळ बीती, कोन्नी भांडी रीती।

छुंयाळ ब्वारी छुंयाळ भुलि, पुंगड़ि-पाटळि मल्सु फुलि।

काँधि मा जुआ गौं मा खोज।

निमणदा नाजा, भला-भला पौंणा।
निहोण्या बरखा बड़ा-बड़ा बुंद।

माघ बरखो कख सैंका, फागुण बरखो क्या सैंका।

सात साकि सांदण रौ नौ साकि थुनेर।

जख लैंदू तख त्योहार।

जन गौड़ी रमाळ छ तनि दुद्याळ दौ होंदी।

रिक्खै खायीं सेळी अर बळ्दै खायीं असेळी।

खै जाणी केळा को पात, नि खै जाणी कपाळी हात।

लोकज्ञान का एक रूप लोकगीतों में भी देखने को मिलता है। ऐसा माना जाता है कि गढ़वाल भूभाग में टिड्डी दल का आक्रमण 1926-30 की अवधि में हुआ था। उसी अनुभव को, लोकसमाज द्वारा लोकगीत के रूप में महत्पपूर्ण लोकज्ञान बना दिया गया था। लोकगीत इस प्रकार है -

सळौ डारि ऐ गैना, डाळि बोटि खै गैना।
फसल पात चाटि गैना, बाजरो खाणों कै गैना।
सळौ डारि डांड्यूं मा, बैठि गैन खाड्यूं मा।

हात झेंकड़ा लीन, सळौ डारि हांकी दीन।
काकी पकाली पलेऊ, काका हकालू मलेऊ।
भैजी हकालू टोपीन, बौऊ हकाली धोतीन।
उड़द गॅथ खै गैना, छूरी सारी कै गैना।
भैर देखा बिजो पट, फसल देखा सफाचट।
प़ड़ीं छ बाल-बच्चों की रोवा-रो।
हे नौनों का बुबाजी, सळौ ऐना सळौ!

(भावार्थ है कि टिड्डी दल पहुँच गए हैं। पेड़-पौधाों को खा गए हैं। फसल-वनस्पति सब चट कर गए हैं और इंसानों को बाजरा खाने के लिए विवश कर दिया है। पहाड़ियों पर और घाटियों में सब जगह टिड्डी दल हैं। सब लोग हाथों में टहनियां लेकर इन्हें हाँकनेद्धभगानेऋ चलो। जो कुछ भी हाथ में हो उसे लेकर निकल पड़ो। बड़े भैय्या तुम अपनी टोपी से ही भगा लो और भाभी तुम अपनी धोती से। अरे देखो! उड़द, गहथ सब खा गए हैं। पूरी सारद्धखेतों की श्रृंखलाऋ को इन्होंने हरियाली-विहीन कर दिया है। बाहर देखो, कैसा दुर्भाग्य आया है। सारी नसल सफाचट हो गयी है। बाल-बच्चों ने रो-रोकर हाहाकार मचा दिया है। हे! बच्चों के पिताजी, सुन रहे हो, टिड्डी दल आ गए हैं टिड्डी दल।)

बैलों को अंध्यारि देना भी कृषि सहयोगी पशुओं के स्वास्थ्य के लिए लोकज्ञान का उदाहरण है। अंध्यारि देना अर्थात् सावन के बरसाती-संक्रमण-संभावित मौसम में बैलों को आइसोलेशन में रखना।

1.6 कला-शिल्प-कौशल लोकसाहित्य

लोकवाद्य वादन सम्बंधी लोकसाहित्य के संदर्भ में ढोलसागर ग्रंथ बहुचर्चित है। अन्य वाद्यों के वादन का भी शास्त्रीय पक्ष होता है पर उनके वादन का ज्ञान अधिकतर अनुकरण और अभ्यास से ही हस्तांतरित होता रहा है। ढोलसागर ग्रंथ की हस्तलिखित प्रतियां भी कुछ परिवारों के पास रही होंगी पर अधिकतर इसका ज्ञान वाचिक परम्परा में ही अस्तित्व में रहा है। ढोलसागर में ढोल की उत्पति और वादन सम्बंधी वर्णन मिलता है। भाषा संस्कृत, हिन्दी और गढ़वाली का मिलाजुला रूप है। ढोलसागर शिव-पार्वती संवाद के रूप में मिलता है। पृथ्वी की उत्पति, सात द्वीपों, नौ खण्डों के निर्माण के साथ पृथ्वी के ऊपर के मंडलों का भी वर्णन मिलता है। ढोल, डोर तथा गजाबल के बारे में इसमें बताया जाता है कि -

अरे आवजी, ईश्वर पुत्र भवे ढोलम, बरमा पुत्र डोरिका। पौन पुत्रम भवे नाद, भीमपुत्रम गजाबलम। आप पुत्र भवे ढोले विष्णु पुत्र भवे पूड़म, कुण्डली नागपुत्रं च कुरुशा पुत्रे कनोटिका।

गढ़वाल में लोककला वंशानुगत व्यवसाय के रूप में मिलती है। लोककला के जो रूप मिलते हैं उनमें से प्रमुख निम्नवत हैं। कोष्ठक में कला-शिल्प विशेषज्ञों की पारम्परिक संज्ञाएँ हैं :-

1. पत्थर तराशने की कला (ओड)
2. काष्ठ कला
3. बुनने की कला
4. सिलने की कला (दर्ज़ी/औजी)
5. आभूषण बनाने की कला (सुनार)
6. बिनने की कला (रुढ़्या)
7. बर्तन बनाने की कला
8. लोहे के औजार/हथियार बनाने की कला (ल्वार)
9. ताँबे के बर्तन/वाद्य/पूजन-सामग्री बनाने की कला (टमोटा)
10. चर्म सामग्री सम्बंधित कला (बाड़ै)
11. नदी पर रस्सी का झूला पुल बनाने व उससे नदी पार कराने की कला (धुनार)
12. तिलहनों से तेल निकालने की कला (कोली)
13. यज्ञ/पूजा में बेदी/चौकी अलंकरण कला

उपर्युक्त समस्त कलाओं के लिए ज्यामिति का ज्ञान अपरिहार्य होता है। किसी तरह के संस्थागत प्रशिक्षण और औपचारिक शिक्षा के बगैर भी कलाविषयक ये ज्ञान वाचिक और गुरू-शिष्य परम्परा से ही चलता रहा। उदाहरणार्थ आयताकार कमरे की नींव के चारों कोनों के पत्थरों को रखते हुए सूत से विकर्णों की बराबर-लम्बाई सुनिश्चित की जाती है। अंतर होने की दशा में इसे त्रिकोण होना कहा जाता है और इसे ठीक करने को त्रिकोण निकालना कहा जाता है। आयत के विकर्णों की लम्बाई एक समान होना, एक ज्यामितीय तथ्य है जिसे पूर्व-माध्यमिक स्तर पर पढ़ाया जाता है।

1.7 सारांश

लोकवार्ता और लोकसाहित्य के विशेषज्ञ लेखक डॉ. सत्येन्द्र ने लोकसाहित्य को जिस तरह से परिभाषित किया है, उससे उसका महत्व और क्षेत्र स्पष्ट हो जाता है।

'लोकसाहित्य के अन्तर्गत वह समस्त भाषागत अभिव्यक्ति आ जाती है, जिसमें -

4. आदिम मानव के अवशेष उपलब्ध हों।
5. परंपरागत मौखिक क्रम से उपलब्ध बोली या भाषागत अभिव्यक्ति हो, जिसे किसी की कृति न कहा जा सके, जिसे श्रुति ही माना जाता हो, और जो लोकमानस में समाई हुई हो।

6. कृतित्व हो किंतु वह लोकमानस के सामान्य तत्वों से युक्त हो। उसके किसी व्यक्तित्व के साथ सम्बंध रहते हुए भी, लोक उसे अपने ही व्यक्तित्व की कृति स्वीकार करें। '

गढ़वाली लोकसाहित्य का महत्व भाषाशास्त्र में तो है ही साथ ही ऐतिहासिक व सामाजिक अध्ययन में भी कम नहीं है। लोकसाहित्य से किसी क्षेत्र के सदियों पुराने भूगोल और तत्कालीन आर्थिकी का भी सटीक अनुमान किया जा सकता है। धर्म/आस्था, विश्वास व संस्कृति का भी प्रतिबिम्ब लोकसाहित्य में दिखायी देता है।

लोकसाहित्य में इतिहास की प्रचुर सामग्री है। इस दिशा में सम्यक् अनुसंधान एवं अन्वेषण से अपरिमित उपलब्धियाँ हो सकती हैं। लोक कलाओं के आनुष्ठानिक स्वरूप में लोक के कलात्मक-मांगलिक स्वरूप के दर्शन होते हैं। इन कलाओं में लोक जीवन मुखरित हुआ मिलता है। अभिनयात्मक अभिव्यक्तियों में लोकनाट्य का इतिहास निहित है। नृत्य और संगीत में लोक के विगत इतिहास का लम्बा सिलसिला मिलता है। सारे के सारे लोकवार्ता साहित्य में, स्थानीय इतिहास मिलता है। लाँग लोकोत्सव में बादियों के अधिकारों के संघर्ष की गाथा है तो प्रबंधगीतों और लोक गाथाओं में ऐतिहासिक और अनैतिहासिक राजपुरुषों और स्थानीय शूरमाओं तथा वीरांगनाओं के शौर्य, प्रेम तथा उत्सर्ग का इतिवृत्त है। संपूर्ण गद्य साहित्य में स्थानीय संघर्ष की जीवंत कहानी है।

खेल बालसुलभ प्रवृति होती है। इसमें बच्चों को स्वाभाविक आनन्द मिलता है। निरर्थक और सार्थक तुकबंदियों को गाना और सुनना भी उनके खेल-आनंद का ही हिस्सा होता है। ये तुकबंदियाँ बच्चों के जीवन का तब से हिस्सा बन जाती हैं जब वे ठीक से चलना-बोलना भी नहीं सीख पाते हैं। बच्चों के खेल सम्बंधी गीत/संवाद लोकसाहित्य का महत्वपूर्ण भाग है। गढ़वाली में भी बच्चों के खेल सम्बंधी पर्याप्त गीत/संवाद/कथा मिलती हैं। बालक्रीड़ा गीत दो प्रकार के होते हैं। एक वे जो बच्चों के मनोरंजनार्थ बड़ों द्वारा उन्हें सुनाये जाते हैं। दूसरे वे जो बच्चे स्वयं खेलते हुए गाते हैं।

छोटे बच्चों को नींद दिलाने के लिए थपकी देकर जो गीत गाये जाते हैं उन्हें लोरी कहते हैं। लोरी में शब्दार्थ से लय अधिक महत्वपूर्ण होता है। रोता हुआ बच्चा लोरी की लय और थपकी की थाप से तंद्रा में चला जाता है। फिर वो स्वयं भी लोरी की लय के साथ अपना अस्पष्ट स्वर मिलाने का प्रयास करते हुए निद्रामग्न हो जाता है। छोटा बच्चा जो अभी बोलने-समझने में सक्षम नहीं होता, वो भी लोरी की स्वरलहरी और तालबद्ध-थपकियों को बखूबी पहचान सकता है। लोरी के प्रभाव में, शिशु ज्ञानेन्द्रियां उसे निश्चिंत होकर सोने का संकेत प्रदान करती हैं।

प्राचीन काल में भले ही गढ़वाल में ऋषि-मुनियों के आश्रम रहे हों पर तदनन्तर शिक्षा की कोई व्यवस्था गढ़वाल में रही नहीं। इसकी पुष्टि इस तथ्य से होती है कि गढ़वाल में पहला प्राथमिक स्कूल कंपनी राज में सन् 1840 में श्रीनगर में खुला था जबकि पहला हाईस्कूल ब्रिटिश राज में सन् 1865 में चोपड़ा (पौड़ी में)। इससे पूर्व लिखने-पढ़ने का कौशल चुनिंदा ब्राह्मण परिवारों तक ही सीमित था और ज्योतिष विषयक ज्ञान भी उन चुनिंदा पढ़ने-लिखने में सक्षम लोगों तक ही था। किंतु इसका अर्थ ये नहीं है कि बाकी लोग ज्योतिष और शगुन शास्त्र का ज्ञान रखते ही न हों। लोकोक्तियों और लोकगीतों में लोक के तत्सम्बंधी ज्ञान के बहुत से उदाहरण मिलते हैं। ये सब जनसामान्य तक वाचिक परम्परा से पहुँचता था।

गढ़वाल के लोकसाहित्य में कृषिविज्ञान सम्बंधी बहुत-सी जानकारी मिलती है। इनमें अधिकांश विज्ञान की कसौटी पर आज भी सत्य हैं। कुछ अपवाद भी अवश्य हैं। घाघ और भड्डहरि की कहावतों की तरह गढ़वाली लोकसाहित्य में भी खेती-किसानी से सम्बंधित लोकोक्ति/कहावत मिलती हैं। कृषि प्रमुख व्यवसाय होने के कारण इससे सम्बंधी लोकोक्तियाँ वाचिक परम्परा मे ंतो हैं पर अभी सभी संकलित नहीं हो पायी हैं।

लोकवाद्य वादन सम्बंधी लोकसाहित्य के संदर्भ में ढोलसागर बहुचर्चित है। अन्य वाद्यों के वादन का भी शास्त्रीय पक्ष होता है पर उनके वादन का ज्ञान अधिकतर अनुकरण और अभ्यास से ही हस्तांतरित होता रहा है। ढोलसागर ग्रंथ की हस्तलिखित प्रतियां भी कुछ परिवारों के पास रही होंगी पर अधिकतर इसका ज्ञान वाचिक परम्परा में ही अस्तित्व में रहा है। ढोलसागर में ढोल की उत्पति और वादन सम्बंधी वर्णन मिलता है। भाषा संस्कृत, हिन्दी और गढ़वाली का मिलाजुला रूप है। ढोलसागर शिव-पार्वती संवाद के रूप में मिलता है।

गढ़वाल में लोककला वंशानुगत व्यवसाय के रूप में मिलती है। लोककला के विभिन्न रूप मिलते हैं।

1.8 शब्दावली

पळ्योख त्वी बिसै - थकान दूर करने के लिए अल्प-विश्राम करना,

गौड़ि - गाय, ग्वस्यूं - मालिक, उज्याड़ - पशुओं द्वारा फसल का नुकसान,

बाळू - बच्चा, स्योणक - सोने के लिए, गिजौण - आदत डलवाना,

झांठी - लाठी, हिटौया - चलने वाला, सैंका - सहेज लो,

ह्यूँ- हिम, बग्वाळ - दीपावली, छुंयाळ - बातूनी,

पुंगड़ि-पाटळि मल्सु फुलि - खेती-बाड़ी में खर-पतवार उग आता है,

निबटदा नाजा - समाप्तप्राय अनाज/खाद्य, पौणा - पाहुन/मेहमान, ख्

1.9 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

1. लोक शब्द अंग्रेजी के .....का सही पर्याय है।
2. हिन्दी में फोकलोर के लिए .....शब्द प्रचलित है।
3. बालक्रीड़ा गीत दो प्रकार के होते हैं। एक वे जो बच्चों के .....बड़ों द्वारा उन्हें सुनाये जाते हैं।
4. बिराळी बिराळी कख जांदी?, बल ..... मन्न भी इसी तरह का एक रोचक बाल-संवाद है।
5. लोरी में शब्दार्थ से .....अधिक महत्वपूर्ण होती है।
6. औंसि लाण, औंसि खाण, औंसि .....नि जाण।
7. जैन करि सकि वैकि खेती, जैन .....सकि वैकि पोथी।
8. लोकवाद्य वादन सम्बंधी लोकसाहित्य के संदर्भ में .....ग्रंथ बहुचर्चित है।
9. किसी तरह के संस्थागत प्रशिक्षण और औपचारिक शिक्षा के बगैर भी कलाविषयक ये ज्ञान वाचिक और गुरू-शिष्य परम्परा से ही चलता रहा। (सत्य/असत्य)
10. ढोलसागर शिव-नारद संवाद के रूप में मिलता है। (सत्य/असत्य)

उत्तर- 1. फोक 2. लोकवार्ता 3. मनोरंजनार्थ 4. माछा

5. लय 6.. परघर 7. पढ़ि 8. ढोलसागर

2.0 संदर्भ ग्रंथ सूची

1. भारतीय लोक संस्कृति का संदर्भ : मध्य हिमालय	:	डॉ. गोविन्द चातक
2. **Garhwal Ancient and Modern**	:	**Rai Pati Ram Bahadur**
3. गढ़वाली भाषा और उसका साहित्य	:	डॉ. हरिदत्त भट्ट 'शैलेश'
4. उत्तराखण्ड के लोकसाहित्य का आयामी परिदृश्य	:	प्रो. डी.डी. शर्मा
5. गढ़वाली लोककला और लोकसाहित्य	:	शांति चौधरी, डॉ. जगदीश गुप्त
5. गढ़वाली लोकसाहित्य की प्रस्तावना	:	मोहनलाल बाबुलकर

2.1 निबन्धात्मक प्रश्न

1. गढ़वाली लोकसाहित्य के संदर्भ में बालक्रीड़ा साहित्य, लोरी साहित्य का सोदाहरण वर्णन कीजिए।
2. गढ़वाली लोकसाहित्य के संदर्भ में ज्ञान-विज्ञान लोकसाहित्य और कला-शिल्प-कौशल-का सोदाहरण वर्णन कीजिए।